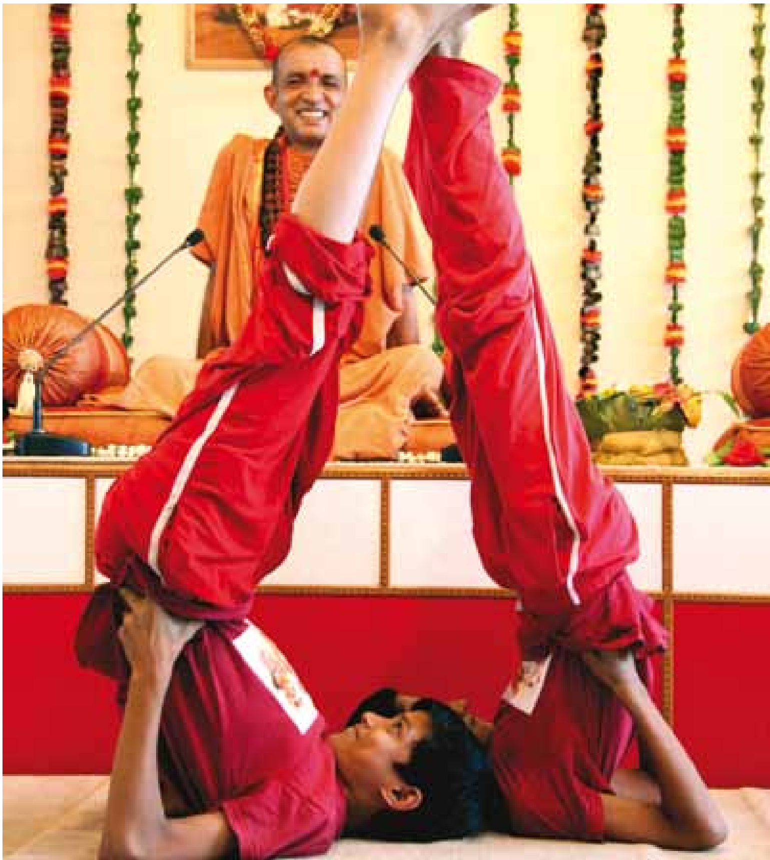
BIHAR YOGA

योगदृष्टि सत्संग शृंखला

# यौगिक जीवन

## स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

# यौगिक जीवन

ॐ, प्रेम, मंगलम्

# यौगिक जीवन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

*विश्व योगपीठ, गंगा दर्शन, मुंगेर में 19 से 22 अगस्त 2011 तक आयोजित योगदृष्टि सत्संग शृंखला के दौरान दिये गये सत्संग*




योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

*योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा* *प्रथम प्रकाशन 2013*
*पुनर्मुद्रण 2016*

ISBN: 978-93-81620-69-4



*प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,*
*मुंगेर, बिहार, भारत*
*मुद्रक—एजीएन ऑफसेट प्रिंटर्स,*
*ग्रेटर नोएडा*

वेबसाइट: www.biharyoga.net



# सविनय समर्पण

*श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के चरणों में*
*जो हमारी आध्यात्मिक यात्रा में सदैव*
*प्रेरणा और मार्गदर्शन प्रदान करते आ रहे हैं*

# विषय सूची

# जीवन और संसार की प्रकृति

*19 अगस्त 2011*

पुराणों में एक राजा की कहानी आती है, जिसने बहुत वर्षों तक राज किया, राज्य की सुख-समृद्धि का भोग किया। लेकिन उसे इस सुख और भोग से तृप्ति नहीं मिली। बल्कि उसने देखा कि जितना भी सुख और भोग प्राप्त किया, उससे अपेक्षाओं और वासनाओं में वृद्धि ही होती गई। राज-काज करते हुए भी उसे मालूम था कि वह संतुष्ट नहीं है, खुश नहीं है, सुखी नहीं है। उसे तनाव है, चिंता है, परेशानी है। जब इस प्रकार के विचार उसके मन में आते थे, तब विरक्ति का भाव भी प्रकट होता था कि यह सब क्या है। राजा होकर भी, सब सुख-संपदा से युक्त होकर भी मन में अशांति है, जीवन में दु:ख और क्लेश हैं।

ऐसे में किसी ने राजा को सुझाव दिया कि महाराज, आपकी उम्र हो रही है। आप राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दीजिए और उसके बाद वानप्रस्थ मार्ग को पकड़ लीजिए। राजा को यह विचार अच्छा लगा। उसने अपने युवराज पुत्र को राजगद्दी पर बैठा दिया और वानप्रस्थ मार्ग को स्वीकार किया। राज्य-दायित्व से निवृत्त होकर जंगल में एकान्त कुटिया बनाकर वह चिंतन करने लगा – 'मैं राजा था, बचपन से ही सुख-सुविधाओं के बीच पला, जीवन में कभी किसी चीज का अभाव नहीं रहा। फिर भी मन में यह व्यग्रता, यह अशांति क्यों है? चिंता, परेशानी और तनाव क्यों है? क्या यही इस जीवन का विधान है? क्या यही इस संसार की नियति है? जीवन क्या है? संसार क्या है?' इस तरह के चिंतन में उसने बहुत समय व्यतीत किया, लेकिन फिर भी उसे अपने प्रश्नों का समाधान नहीं मिला।

एक दिन जब वह अपनी कुटिया के सामने इसी चिंतन में बैठा हुआ था, तो देखा कि एक बूढ़ा जंगल की पगडण्डी पर चलते हुए उसकी ओर आ रहा है। बूढ़े के आने पर वानप्रस्थी राजा ने खड़े होकर उसका अभिवादन किया, आसन दिया, बैठाया। बैठने पर बूढ़ा आदमी राजा से पूछता है, 'आपके माथे पर चिंता की रेखाएँ हैं। आप एकान्त में बैठकर क्या सोच रहे हैं?'

राजा अपनी चिंता बतलाता है, 'महाशय, मैंने पैंसठ साल की उम्र तक राजभोग किया। लेकिन फिर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई, आन्तरिक शांति नहीं मिली। अब मैं इस सोच में हूँ कि क्या अशांति और दु:ख ही इस संसार का स्वभाव है, या इसके परे भी कुछ और अनुभव हो सकता है जिससे सच्ची सुख-शांति मिल सकती है।

बूढ़ा आदमी राजा से कहता है, 'हमारे साथ जंगल में चलो, वहाँ हम लोग भ्रमण करेंगे।' बहुत देर तक दोनों चलते रहे। चलते-चलते राजा थक गया, उसने बूढ़े से कहा, 'कुछ समय बैठकर विश्राम कर लेना चाहिए। काफी देर से चल रहे हैं, थकान हो गई है। शरीर बूढ़ा है, भूख सता रही है। कहीं पर विश्राम करके कुछ कंद-मूल-फल खा लें। उसके बाद फिर वापिस कुटिया लौट चलते हैं।' बूढ़े ने कहा, 'नहीं, थोड़ा और चलो। आगे एक वृक्ष है, जिसके नीचे हम लोग बैठेंगे।' ऐसा कहकर वह चलता गया।

थोड़ी देर बाद एक पेड़ नज़र आया। बूढ़ा राजा से कहता है कि इस वृक्ष के नीचे विश्राम कीजिए। राजा वृक्ष को देखता है। वह वृक्ष पत्तों और फलों से नहीं, बल्कि काँटों से भरा था। पेड़ की टहनियों में केवल बड़े-बड़े काँटे ही लगे हुए थे। कुछ हरे और नए थे, कुछ सूखे हुए थे जो कभी भी गिर सकते थे। बुजुर्ग आदमी ने कहा था कि यहाँ पर बैठकर आराम करो, इसलिये राजा ने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप उस पेड़ के नीचे बैठ गया। लेकिन कुछ देर बाद जब पवन का वेग धीरे-धीरे प्रबल होने लगा तब उस काँटेदार वृक्ष की शाखाएँ हवा में हिलकर आपस में रगड़ने लगीं। जैसे-जैसे वे हवा में हिलने लगीं, वैसे-वैसे सूखे काँटे नीचे गिरने लगे।

काँटे नीचे गिरकर राजा के शरीर में चुभने लगते हैं। वह उठ खड़ा होता है और बूढ़े से कहता है, 'आपने मुझे यहाँ क्यों बैठाया है? हवा से काँटे गिर रहे हैं और मुझे चुभ रहे हैं।' बूढ़े ने कहा, 'जब हवा नहीं थी तब तो तुम्हें काँटे नहीं चुभ रहे थे। अब हवा चली तो इस वृक्ष के काँटे गिरकर तुम्हें चुभने लगे। तुम्हें कष्ट हुआ, दर्द हुआ और तुम उठ खड़े हुए। ठीक है, यहाँ से हट जाओ।'



राजा ने पूछा, 'आपने मुझे इसी वृक्ष के नीचे बैठने के लिए क्यों कहा? यहाँ तो आम, बरगद, आदि के अनेकों वृक्ष हैं। लेकिन आपने इस काँटेदार वृक्ष का ही चयन क्यों किया?' बूढ़ा कहता है, 'महाराज, आपके मन में संसार के बारे में जो चिंतन चल रहा था, मैं उसी को समझाने के लिए आया हूँ। यह काँटेदार वृक्ष संसार का प्रतीक है और संसार में जो भी यात्री आता है, इसी वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करता है। जब तक हवा नहीं चलती, तब तक व्यक्ति सुख में रहता है। उसके ऊपर काँटे नहीं गिरते, काँटे शरीर में नहीं चुभते। लेकिन जैसे ही हवा चलती है, इस वृक्ष से काँटे बरस कर शरीर को कष्ट देते हैं, और यही संसार का स्वभाव है।'

राजा ने कहा, 'मुझे यह बात समझ में नहीं आयी। कृपया स्पष्ट करें कि आप कहना क्या चाहते हैं?' बूढ़ा कहता है, 'महाराज, संसार दो जगह होता

है। एक बाहर और दूसरा भीतर। मनुष्य संसार से कभी मुक्त नहीं हो सकता। जो इस संसार में जन्म लेता है, वह इसी संसार में मरता है। इसी संसार में वह सुख-दु:ख का भोग करता है। इसी संसार में उसे उपलब्धि होती है और इसी संसार में उसे निराशा हाथ लगती है।'

## संसार का वास्तविक स्वरूप

पुराणों में वर्णित यह दृष्टान्त मात्र कथा नहीं बल्कि जीवन का सत्य भी है। संसार के दो स्वरूप हैं, बाह्य और आंतरिक। जो कुछ बाहर दृष्टिगोचर हो रहा है, यह जो धरती, ग्रह-नक्षत्र, सौरमण्डल दिखलाई दे रहे हैं, यह सब तो संसार है ही, लेकिन भीतर में जो मन है, वह भी संसार का ही स्वरूप है। जब तक आदमी इस संसार में रहता है, चाहे भीतर हो या बाहर, उसे अपने जीवन में सुख और दु:ख का भोग करना ही पड़ता है। जब अपेक्षाओं और वासनाओं की हवा चलती है, तब जो फूल या काँटे आपके शरीर पर गिरते हैं, वही सुख और दु:ख कहलाते हैं। जब सुख मिलता है, तब यह मानकर चलो कि तुम पर फूल बरस रहे हैं और जब दु:ख होता है, तब मानकर चलो कि तुम पर काँटे बरस रहे हैं।

जो बाहर है वही भीतर भी है। एक ओर मनुष्य बाहरी संसार के विषयों से आसक्त होता है, दूसरी ओर वह आंतरिक संसार की वासनाओं से प्रभावित होता है, और यही संसार है। जो भी प्राणी इस संसार में जीता है, इसके प्रभावों से अछूता नहीं है। जिस प्रकार मछली जल में जीती है और हमेशा जल से भीगी रहती है, उसी प्रकार हम संसार में जीते हैं और हमारे चारों तरफ जो संसार का प्रभाव है, उससे हम मुक्त नहीं हैं।

## मन का कार्य

हर प्राणी का संसार के साथ जो सम्बन्ध है, वह मन और विषयों का होता है। मन भी एक इन्द्रिय है। सामान्य रूप से हम लोग पाँच इन्द्रियों की बात करते हैं – कान, नाक, त्वचा, आँख और जीभ, पर इन पाँच इन्द्रियों के अतिरिक्त एक और इन्द्रिय है, जो इससे सूक्ष्म है। गीता में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि मन सहित छ: इन्द्रियाँ हैं, *'मन:षष्ठानीन्द्रियाणि'*। पाँच इन्द्रियाँ, जो विषयों से जुड़ती हैं और छठी इन्द्रिय मन, जो इन इन्द्रियों के अनुभवों का भोग करती है।

संसार का अनुभव हर व्यक्ति करता है, लेकिन हर अनुभव को अपने तरीके से आत्मसात् करता है, क्योंकि हर व्यक्ति की मानसिकता, संस्कार

और प्रारब्ध अलग हैं। जैसे हर व्यक्ति का चेहरा उसके लिए निश्चित है, उसी प्रकार हर व्यक्ति के लिए मानसिकता, संस्कार और प्रारब्ध भी निश्चित है। इसीलिए जीवन की परिस्थितियों का आभास और अनुभव हर व्यक्ति को अलग होता है। हम यह अनुभव भौतिक मन के साथ करते हैं, जो संसार के विषयों से जुड़ा है। इसलिए मन में हमेशा एक अपेक्षा, इच्छा, वासना जन्म लेती रहती है। अगर एक फूल को भी देखोगे तो फूल के प्रति एक वासना जन्म लेती है कि इसको तोड़कर अपने पास रख लूँ। अच्छे भोजन को देखकर खाने की वासना होती है। मतलब हर व्यक्ति के जीवन में इच्छा है। उसे कोई नियंत्रण में रख लेता है तो कोई नियंत्रण में नहीं रख पाता। जब इच्छा या वासना अनियंत्रित हो जाती है तो इसी के कारण मन का संतुलन बिगड़ जाता है। जब जीवन में असंतुलन उत्पन्न होता है, तब उस असंतुलन का पहला परिणाम अशांति होता है। इस स्थिति को तुम अनेक नाम दे सकते हो, कह सकते हो कि मन चंचल हो जाता है या अवसाद में चला जाता है या उत्तेजित हो जाता है, लेकिन जो भी नाम दो, इसका एक ही कारण है, 'अशांति'। अगर मन शांत रहता तो अवसाद में नहीं जाता, उत्तेजित नहीं होता।

## मनोरोगों की उत्पत्ति

दरअसल हमें संतुलित रहने का, अपने आपको व्यवस्थित रखने का तरीका मालूम नहीं है। हम इसी दौड़-भाग में चले जा रहे हैं कि यह भी चाहिए, वह भी चाहिए। किस प्रकार से हम अपने आपको संतुलित रख सकें, इसके लिए कौन-सी विधि है, यह किसी को मालूम नहीं। प्राचीन समय में यह शिक्षा का अभिन्न अंग हुआ करता था। उस काल में लोग गुरुकुलों में जाकर कुछ समय व्यतीत करके शिक्षा ग्रहण करते थे। इन गुरुकुलों में आध्यात्मिक और भौतिक, दोनों आयामों की शिक्षा दी जाती थी, ताकि मनुष्य भौतिक जीवन में अपने कार्यों का निर्वाह करते हुए भी आंतरिक शांति और संतुलन प्राप्त कर सके, अपनी आंतरिक प्रतिभा को जाग्रत कर सके।

जब से हमारे जीवन से अध्यात्म की शिक्षा दूर हुई और अध्यात्म को केवल धर्म के रूप में माना जाने लगा, तब से मनुष्य की परमात्मा से दूरी बढ़ी है। मनुष्य माया से जुड़ता गया है। अगर आप चाहते हैं कि आपकी परमात्मा से दूरी कम हो, तो उसके लिए सोचना पड़ेगा। केवल नाम जपने, ध्यान करने या सदाचार करने से यह दूरी कम नहीं होती। परमात्मा से दूरी तब कम होती



है जब हम अपने मन को संसार के विषयों से हटाकर परमात्मा से जोड़ते हैं। यह संभव नहीं कि हम संसार के विषयों से भी जुड़े रहें और परमात्मा का भी ख्याल होता रहे। नहाओ और चाहो कि शरीर गीला न हो, यह संभव नहीं।

प्रकृति के प्रभाव में आकर मनुष्य अपने आपको विषयों से जोड़ता है। प्रकृति के कारण व्यक्ति विषयों से सम्मोहित हो जाता है और उनकी कामना करता है। जब कामना पूर्ण नहीं होती, तब असंतोष और अशांति का सामना करता है। विज्ञान भी यही कहता है कि मनुष्य अपने जीवन में जो आधी से ज्यादा परेशानियों का सामना करता है, उनका स्रोत मन है, बाहर की परिस्थितियाँ नहीं। जब चिंता-परेशानी होती है, तब मन का संतुलन बिगड़ जाता है। आदमी या तो उतेजित हो जाता है या अवसाद में चला जाता है। रो-धोकर, अपने आपको कमजोर बनाकर, असक्षम मानकर दूसरों की सहानुभूति हासिल करना चाहता है या फिर उत्तेजित हो जाता है। उत्तेजित होकर जिद्द करता है कि जब तक ऐसा नहीं होगा मैं यह नहीं करूँगा। फिर वह किसी की नहीं सुनता, चाहे गुरु की ही बात क्यों न हो। अवसाद या उत्तेजना की अवस्था में आए हुए अपने भक्त को अगर भगवान भी बोलेंगे कि ऐसा मत करो, तो भक्त सुनने वाला नहीं है। उत्तेजना की स्थिति में मन संकुचित हो जाता है। तब उस समय वह किसी की परवाह नहीं करता।

इस प्रकार जब मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, वह धीरे-धीरे एक शारीरिक असंतुलन, शारीरिक रोग का रूप ले लेता है। मुकदमा हो गया या लड़की

की शादी नहीं हो रही है या बेटा उत्पाती हो गया है, चिंता हो जाती है, नींद गायब हो जाती है, भूख गायब हो जाती है, रक्तचाप बढ़ने लगता है। जब यही परिस्थिति चलती रहती है, तब बाद में एक रोग भी प्रकट हो जाता है, जिसे विज्ञान की भाषा में साइकोसोमेटिक इल्नेस या मनोकायिक रोग कहते हैं।

ये मनोरोग केवल सिज़ोफ्रेनिया या साइकोसिस जैसी बीमारियों तक ही सीमित नहीं जिन्हें आधुनिक मनोविज्ञान पहचानता और निदान करने का प्रयास करता है। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या और लालच भी मन की विकृत मनोदशाएँ हैं। उनसे सावधान रहना सीखो। उनसे अपने मन की रक्षा करो। अपनी घृणा या ईर्ष्या के आवेश में मत बहो। अगर तुम इनसे प्रभावित हो जाते हो, तो तुम्हारा शरीर बीमार पड़ जाएगा। वह विकृति दमा, मधुमेह या कैंसर के रूप में उभरेगी। घृणा भी तो मन का कैंसर है, क्योंकि वह बढ़ते ही जाता है। तुम इसका इलाज कैसे करोगे?

## कामनाओं का चक्रव्यूह

अगर आज हम आधुनिक परिस्थिति का अवलोकन करें, तो समाज में अराजकता और अशांति ही व्याप्त देखते हैं। उसका क्या कारण है? चारों तरफ युद्ध और संघर्ष चल रहे हैं। मनुष्यों में मित्रता नहीं है। सब अपने स्वार्थ के चेले बने हैं। यह आज की परिस्थिति है। लोग पूछते हैं कि ऐसा क्यों है। इसलिए कि मनुष्य ने अपने आपको आज तक जाना नहीं है। वह केवल विषय-पूर्ति की कामना करता रहा है। यह परम्परा आज की नहीं, हर युग की है, चाहे वह सतयुग हो, द्वापर हो या त्रेता। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं –

*ध्यायतो विषयान्पुंस: संगेस्तेषूपजायते।*
*संगात्सञ्जायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥2.62॥*
*क्रोधाद्भवति सम्मोह: सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम:।*
*स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥2.63॥*

श्रीकृष्ण अर्जुन को बता रहे हैं कि जब व्यक्ति का सम्बन्ध किसी विषय से होता है, तब उस सम्बन्ध के कारण एक इच्छा, एक वासना की उत्पत्ति होती है। और उस इच्छा या वासना के पूर्ण नहीं होने पर मनुष्य चंचल और उत्तेजित हो जाता है। उत्तेजित होकर वह अपने आपको विषय से सम्मोहित कर लेता है। जब यही कामना प्रबल हो जाती है तब फिर स्मृति भी समाप्त हो जाती है।

स्मृति का मतलब आदमी सही-गलत का निर्णय नहीं ले सकता। सही-गलत आखिर क्या होता है?

आप तुलसीदास जी की कहानी जानते हो। जब उनकी पत्नी घर छोड़कर मायके चली गई, तब तुलसीदास बहुत व्यथित हो गये और उन्हें एक क्षण का भी चैन नहीं। वे भी उसी दिन पत्नी के मायके की ओर चल पड़े। बारिश का समय था। नदी में उफान था। नौका नहीं थी। एक शव नदी में बह रहा था। अंधकार में उन्होंने उस शव को नौका माना और उस पर सवार होकर नदी पार कर गये। जब पत्नी के घर पहुँचे, तब रात थी। घर में प्रवेश कैसे करें? सब खिड़की-दरवाजे बंद थे। उन्होंने छत से एक रस्सी को लटकते देखा और रस्सी को पकड़कर छत पर चढ़कर घर के भीतर प्रवेश किया। जब बाद में पता लगाया गया कि वह रस्सी वहाँ पर कैसे रखी गई थी, तब मालूम पड़ा कि वह तो एक बहुत बड़ा साँप था, जिसे पकड़कर वे ऊपर चढ़े थे!

उस कामोत्तेजना में उन्हें शव, शव के रूप में नहीं और साँप, साँप के रूप में नहीं दिखाई दिये, बल्कि अपनी कामना-पूर्ति हेतु नौका और रस्सी के रूप में दिखलाई दिये। जब आदमी सांप को देखकर सोचे कि यह रस्सी है, उसको पकड़े और उसकी चिकनाहट, सरसराहट को भी नहीं समझ पाए, तब यह तो स्मृतिभ्रंश है न! शव के ऊपर क्या नाव जैसे बैठ सकते हैं? उस पर तो घोड़े जैसी सवारी करनी पड़ेगी, हाथ-पैर मार कर नदी पार करनी होगी। उन्होंने इतना सब किया, फिर भी भावोत्तेजना के कारण आभास नहीं हुआ कि मैं शव पर नदी पार कर रहा हूँ।

इसी को कहा गया है *'सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो।'* स्मृति भ्रष्ट हो जाती है तो बुद्धि का नाश होता है। और एक बार जब बुद्धि मर जाती है तब यह मानकर चलो कि तुम भी *'हरिः ॐ तत्सत्'* हो गये हो, क्योंकि बुद्धि के मरने पर आदमी का कोई भी कार्य सही रूप से सिद्ध नहीं होता। जब तक बुद्धि जीवित है, विवेक-ज्ञान है, तब तब आदमी उसका प्रयोग करके अपने जीवन को चला लेता है। लेकिन बुद्धि के नहीं रहने पर मनुष्य का जीवन मृत-तुल्य होता है।

## माया और भक्ति

यद्यपि असंतोष और अशांति ही जीवन में मानसिक क्लेश और शारीरिक व्याधि के कारण बनते हैं, यह संभव है कि मनुष्य इनसे अपने आप को मुक्त



करके मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य का अनुभव करे। जब तक शरीर स्वस्थ रहेगा और इस पर अशांति-असंतोष के नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ेंगे; जब तक मन शांत रहेगा और विषयासक्ति के कारण इसमें चंचलता और उत्तेजना नहीं आयेगी, तब तक मनुष्य के जीवन में विकास संभव है। इसी विकास को शास्त्रों में माया से ब्रह्म की ओर यात्रा कहा गया है।

हम माया में लिप्त हैं, इससे मुक्त होकर हमें ईश्वर की ओर जाना है। यह संसार तामसिक रूप में प्रतीत होता है, तुम तमस् से सत्त्व की ओर जाओ, इसी में तुम्हारी मुक्ति है। तमस् हो जाता है माया का बन्धन और सत्त्व हो जाता है ईश्वर का प्रभुत्व। तुम माया के तामसिक बन्धन से अपने आप को मुक्त करो, सत्त्व की ओर आओ, जहाँ पर तुम उस उच्च चेतना का अनुभव सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ सत्ता के रूप में कर सकते हो। यह जान लो कि तुम जिस ईश्वर का अनुभव कर रहे हो, वही तुम हो।

हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी एक बात कहते थे, 'भगवान तुमसे अलग नहीं है, जहाँ तुम हो वहीं पर तुम्हारा ईश्वर है।' इस चीज को हमेशा याद रखना। ईश्वर मंदिर, गिरजाघर या मस्जिद में नहीं, बल्कि जहाँ तुम हो वहीं पर है। और जहाँ तुम नहीं हो, वहाँ पर ईश्वर भी नहीं है। हमारे गुरुजी ने यह बात तो बहुत सहज तरीके से कह दी, लेकिन जब हम पता लगाने का प्रयास करते हैं कि क्या यहाँ पर वाकई ईश्वर भी बैठा है, तो दिक्कत होती है। मानते

हैं कि गुरुजी ने कहा है, लेकिन अपनी खोपड़ी का सामना होता है, भगवान का नहीं। अपने मन का, अपने विचारों, वासनाओं, इच्छाओं और अहंकार का दर्शन होता है, प्रभु का नहीं।

इस संदर्भ में पुराणों में एक सुन्दर कहानी है। सतयुग में माया और भक्ति, दोनों का सगी बहनों का सम्बन्ध था। माया के वस्त्र चिथड़े और पुराने हुआ करते थे, जबकि भक्ति के वस्त्र नये और चमकीले थे। सभी लोग भक्ति की ओर ज्यादा आकृष्ट होते थे, क्योंकि वह सुन्दर कपड़े पहनती थी, अच्छे मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती थी। माया के पीछे कोई नहीं जाता था क्योंकि माया का साथ देना मतलब दुर्गुणों का साथ देना।

जैसे-जैसे युग बीतते गये, माया को लगा कि मेरी ओर तो कोई नहीं देखता, सभी भक्ति को देखते हैं। मैं एक किनारे में अकेली पड़ी रहती हूँ और भक्ति अनेक लोगों के झुण्ड में घिरी रहती है। कुछ करना चाहिए। एक दिन उसने भक्ति से कहा कि चलो, प्रात:काल तालाब में नहायेंगे। तालाब के किनारे पहुँचकर दोनों अपने-अपने वस्त्र उतारकर पानी में चले गये। माया के मन में खोट था। वह अपने शरीर को जल्दी से रगड़कर बाहर निकली और भक्ति के चमकीले वस्त्र धारण करके खिसक गई। कुछ देर बाद भक्ति स्नान करके निकली। वह देखती है कि उसके वस्त्र गायब हो गये। वह बेचारी क्या करे? उसने चारों तरफ खोज की। देखा कि वहाँ पर माया के चिथड़े कपड़े पड़े थे। लाचार होकर उसे वे चिथड़े वस्त्र पहनने पड़े। तब से इस कलियुग में लोग माया को ज्यादा मानते हैं और भक्ति को कम। पर हमारे विद्वानों और मनीषियों ने यही बात कही है कि अपने आप को माया के चंगुल से बचाकर और भक्ति के साथ आकर ही सच्ची शांति मिल सकती है।

## योग का प्रयोजन

इतना तो स्पष्ट है कि हमें तमस् से सत्त्व की ओर, माया से भक्ति की ओर जाना है। लेकिन इसका व्यावहारिक तरीका क्या हो सकता है? हमारे प्राचीन योगियों और मनीषियों ने कहानी के राजा की तरह सोचना शुरू किया, 'मनुष्य का जन्म क्यों होता है?' तुम जन्म लेते हो, बचपन में खेल-कूद करते हो, विद्यालय में भावी जीवन के लिए शिक्षा और हुनर प्राप्त करते हो। बढ़े होकर तुम कोई नौकरी या व्यवसाय करते हो, अपने परिवार की परवरिश करते हो। इसमें अनेक प्रकार के संघर्षों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है और चिंता तुम्हारे जीवन

का अभिन्न अंग बन जाती है। अगर नौकरी नहीं है तो चिंता, अगर है तो भी चिंता। बच्चें नहीं हैं तो चिंता, हैं तो भी चिंता। धन-सम्पत्ति नहीं है तो चिंता, है तो भी चिंता। इस प्रकार जीवन में चिंता निरंतर बनी रहती है।

योगियों ने अपने आप से पूछा, 'क्या सभी को इसी तरह का जीवन जीना पड़ेगा? कभी किसी से दोस्ती तो कभी किसी से दुश्मनी, कभी किसी की प्रशंसा तो कभी किसी की निंदा, क्या जीवन का यही प्रयोजन है?' परिस्थितियाँ और घटनाएँ बदल सकती हैं, लेकिन पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर्म और उनके परिणाम वही होते हैं।

इस प्रकार का चिंतन करते हुए योगियों ने कहा, 'नहीं। जीवन जीने का बेहतर तरीका भी होना चाहिए। जीवन की सीमाओं में रहते हुए भी इन सीमाओं से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए कौन-सी विधि, कौन-सा तरीका है?'

कालान्तर में हमारे मनीषियों ने इस हेतु जिस पद्धति का विकास किया, उसे योग का नाम दिया। उन्होंने कहा कि अगर तुम इस प्रणाली का पालन करते हो, तो अपने जीवन से असंतोष और अशांति को दूर कर तमस् से सत्त्व की ओर जा सकते हो; अपने आपको माया के चंगुल से मुक्त करके अपनी आंतरिक प्रतिभा को जाग्रत कर सकते हो; अपने आप को भक्ति भावना से युक्त कर सकते हो। इस तरह की बातें तो बहुत कही जाती हैं, लेकिन इसका व्यावहारिक उपाय योग है।

योग तो मात्र एक नाम है, इसका वास्तविक अर्थ क्या है? योग के हर ग्रंथ में योग की अलग ढंग से व्याख्या की गई है। मैं यहाँ उन व्याख्याओं का उल्लेख नहीं, बल्कि योग के मूल सिद्धांत को समझाने का प्रयास कर रहा हूँ। हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि योग के द्वारा तुम अपने जीवन की विक्षिप्त अवस्थाओं को एकाकार कर सकते हो। उन्होंने यह नहीं कहा कि योग का अंतिम उद्देश्य मोक्ष या ईश्वर-दर्शन या आत्म-साक्षात्कार है, बल्कि उन्होंने इस चिन्तन को व्यावहारिक रूप दिया।

जिन लोगों ने योग और अध्यात्म के सिद्धांतों को ठीक से नहीं समझा है, वही लोग ईश्वर-दर्शन या आत्म-साक्षात्कार को योग का लक्ष्य मानते हैं। लेकिन किसी भी सिद्ध महापुरुष या योगशास्त्र ने यह बात नहीं कही है। क्यों? इसलिए कि वे जानते थे कि यह मनुष्य के लिए बहुत कठिन यात्रा है। क्या तुम परमाणु का विस्फोट करने में सक्षम हो? नहीं। इससे पहले कि तुम

यह करना सीख सको, तुम्हें अक्षर-ज्ञान सीखना होगा, साक्षर बनना होगा। फिर स्कूल-कॉलेज के लम्बे दौर से गुजरकर, विभिन्न वैज्ञानिक विषयों को सीख-समझकर, उनपर प्रयोग कर, तुममें कहीं यह क्षमता आएगी कि तुम प्रयोगशाला में परमाणु-विस्फोट कर सको।

योगियों के अनुसार ईश्वर-साक्षात्कार की कामना रखना उसी तरह है जिस तरह एक अंधा व्यक्ति चाहे सूरज को देखना। सूरज को देखना अंधे की चाह हो सकती है, लेकिन यह उसकी जरूरत नहीं। अंधे व्यक्ति की जरूरत है नेत्रों की ज्योति। एक बार उसे दृष्टि प्राप्त हो जाएगी तो वह सूरज, चाँद, सितारे, सब कुछ देख सकता है। सूरज को देख पाने की बजाय दृष्टि प्राप्त करना अंधे की प्राथमिकता है। इसी प्रकार आत्म-साक्षात्कार या ईश्वर-दर्शन मनुष्य जीवन की प्राथमिकता नहीं है। अपने मन की अशुद्धियों और विकारों का परिष्कार करते हुए एक शुद्ध, संतुलित, सामंजस्यपूर्ण अवस्था प्राप्त करना ही हर व्यक्ति का लक्ष्य, प्रयोजन और पुरुषार्थ होना चाहिए।

## योग द्वारा जीवन की फाइन-ट्यूनिंग

इस सम्बन्ध में योगियों ने तानपूरे का उदाहरण दिया। तानपूरे में चार तार होते हैं। अगर सभी तारों का आपस में तालमेल रहे तो उससे आप सा-रे-गा-मा-पा-धा-नी-सा, सभी स्वरों को गा सकते हो। लेकिन अगर इन चारों में एक का भी तालमेल ठीक नहीं, तो आप एक भी स्वर, एक भी राग ठीक तरीके से नहीं पकड़ पाओगे।



जैसे राग को निकालने के लिए तानपूरे के चार तारों को सही प्रकार से फाइन-ट्यून करना पड़ता है, सुनियोजित करना पड़ता है, वैसे ही अपने जीवन के साथ भी करना पड़ता है। जीवन का एक तार है शारीरिक, दूसरा मानसिक, तीसरा भावनात्मक और चौथा आध्यात्मिक। इन चारों के बीच सही तालमेल बैठाना है, फाइन-ट्यूनिंग करना है। कभी-कभी फाइन-ट्यूनिंग में ही लोगों को रस मिल जाता है। हमें याद है, एक बार सन् 1981

में पण्डित रविशंकर अमेरिका आये थे। उस समय हम भी वहाँ रहते थे। उनके संगीत कार्यक्रम में हमें भी निमंत्रण आया। जब उस समारोह में गये तो हॉल भरा हुआ था। पण्डित जी अपने शिष्यों के साथ आते हैं और मंच पर बैठते हैं। पन्द्रह मिनट तक टिन-टिन-टिन, ठक-ठक होता रहता है। उसके बाद वहाँ का व्यवस्थापक खड़ा होकर माइक में कहता है कि वाह! कितना सुंदर संगीत है। पण्डित जी मुस्कुरा पड़े। उन्होंने कहा कि अभी तो संगीत शुरू ही नहीं हुआ, ट्यूनिंग चल रही है! बहुत बार फाइन-ट्यूनिंग करते-करते भी मजा आ जाता है।

स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि योग का प्रयोजन इस जीवन के चार तारों को ठीक से ट्यून कर देना है। जब जीवन के चार तारों को ठीक से रखोगे, तब तुम्हारे जीवन में गजब का संगीत पैदा होगा। वह संगीत ब्रह्माण्ड को नचा सकता है। हमारे प्रबुद्ध ऋषि-मुनियों ने आखिर क्या किया? उन्होंने अपनी तारों को ही ठीक किया। आज भी उनकी ध्वनि, उनकी शिक्षा, उनका आदर्श, उनका चरित्र इस ब्रह्माण्ड में गूंज रहा है।

## बुद्धि, भावना और कर्म का समन्वय

योग एक ऐसी प्रणाली है जिससे हम अपने दिमाग, दिल और हाथों की प्रतिभाओं, अर्थात् अपनी बुद्धि, भावना और कर्म को समन्वित और परिष्कृत कर सकते हैं। यही स्वामी शिवानन्द जी का मत और संकल्प था। वे कहा करते थे कि बुद्धि, भावना और कर्म की अभिव्यक्ति कभी रुकने वाली नहीं है। यह तो चलती रहेगी। संसार और समाज से व्यापार होता रहेगा। लेकिन इसे बेहतर बनाया जा सकता है। इसमें सामंजस्य और निःस्वार्थ भाव लाया जा सकता था, जिसका तुम्हारे वर्तमान विक्षिप्त जीवन में अभाव है।

मन का विक्षिप्त स्वभाव ही जीवन में दुःख का कारण बनता है। मन हमेशा किसी व्यक्ति या वस्तु से चिपकना चाहता है। घर में पति-पत्नी या सास-बहू के बीच अनबन होती है तो दुःख का अनुभव होता है। क्यों? एक सम्बन्ध, एक आसक्ति, एक अपेक्षा के कारण। सिर्फ घर में नहीं, दफ्तर में भी अनबन होती है तो वह दुःख, तनाव और उद्विग्नता का कारण बन जाती है। इसके लिए योग ने एक बहुत सरल प्रक्रिया विकसित की। योगियों ने कहा, 'सबसे पहले मन प्रभावित होता है, इसलिए पहले मन को संभालो।' इसी बिन्दु से महर्षि पतंजलि ने राजयोग की शुरुआत की – अपनी चित्तवृत्तियों को संभालना सीखो, अपने मन की अभिव्यक्तियों को समन्वित करने का प्रयास करो।

इस प्रकार योग एक ऐसे विषय और विज्ञान के रूप में विकसित हुआ जिसके माध्यम से हम अपने जीवन की सीमित, दु:खप्रद अवस्थाओं से हटकर, अपनी असीम, आनन्दमयी प्रकृति का अनुभव कर सकें।

अभी हमने योग-साधना विषय की भूमिका बनाई है। योग-साधना के बारे में लोग प्राय: बहुत-सी भ्रांतियाँ और गलतफहमियाँ लेकर चलते हैं। हम लोग चर्चा करेंगे कि सामान्य रूप से एक व्यक्ति को योग से पूर्ण लाभ लेने के लिए कौन-कौन सी विधियों का अभ्यास करना होगा, जिन्हें हर दिन, हर सप्ताह, हर पक्ष, हर महीने और हर साल किया जा सके। हम बहुत बार इस बात को कह चुके हैं कि योग केवल अभ्यास नहीं, जीवनशैली है। जीवनशैली का मतलब, इसे जीवन के आचरण का, व्यवहार का अंग बनाना है। जैसे क्रोध, भय, इच्छा-अनिच्छा, खाना-पीना, सोना-जागना तुम्हारे जीवन का अंग है, वैसे ही योग को भी जीवन का अंग बनाना है। इसके लिए हमें योग को एक अभ्यास या साधना के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवनपद्धति के रूप में समझना होगा।



# योग का विकास

*20 अगस्त 2011*

योग शास्त्र का मूल प्रयोजन मनुष्य को तामसिकता से हटाकर सात्त्विकता में स्थापित करना है। हमारा स्वभाव और व्यक्तित्व अभी तमोप्रधान है। तमस् का मतलब बन्धन होता है। कोई एक विचार, मान्यता, विश्वास, पूर्वाग्रह अथवा दुराग्रह हमें बाँध लेता है। मन या जीवन में जो भी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, वे हमें बाँधकर रख देती हैं। उसके कारण हमारी अभिव्यक्ति, हमारी प्रतिभा, हमारी स्पष्टता संकीर्ण हो जाती है। जब हमारी शक्ति, ऊर्जा, प्रतिभा और बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, तब फिर जीवन में कर्म नहीं, संघर्ष करना पड़ता है।

मनुष्य कर्म को सही रूप से तभी करता है जब वह अपने पूर्वाग्रहों या दुराग्रहों से स्वतंत्र हो जाता है। तब फिर उसके द्वारा जो कर्म सम्पादित होता है, वह एक कर्त्तव्य या धर्म के रूप में होता है। जब तक हमारे मन में पूर्वाग्रह और दुराग्रह हैं, जब तक हमारा मन कुण्ठित है, तब तक कर्म नहीं होता। हम कर्म करते हैं लेकिन वह संघर्ष का रूप ले लेता है। उससे फिर असंतोष और अशांति उत्पन्न होती है। पर जब सही प्रकार से कर्म हो तब उसमें असंतोष और अशांति की उत्पत्ति नहीं होती। जो अपने जीवन में, अपने कर्मों में संतोष और शांति को अभिन्न अंग बना देता है, वही कर्मयोगी कहलाता है।

झाड़ू लगाने वाला हर व्यक्ति या दफ्तर में काम करने वाला हर आदमी कर्मयोगी नहीं कहलाता, क्योंकि उसके भीतर असंतोष की भावना है, उसके मन में अपेक्षाएँ हैं। वह परिणामों की खोज करते हुए संतोष-असंतोष, शांति-अशांति का अनुभव करता है। इस प्रकार जीवन में सामान्य रूप से

संपादित होने वाले कर्म एक प्रयास और संघर्ष का रूप लेते हैं और सहज रूप से संपन्न नहीं होते।

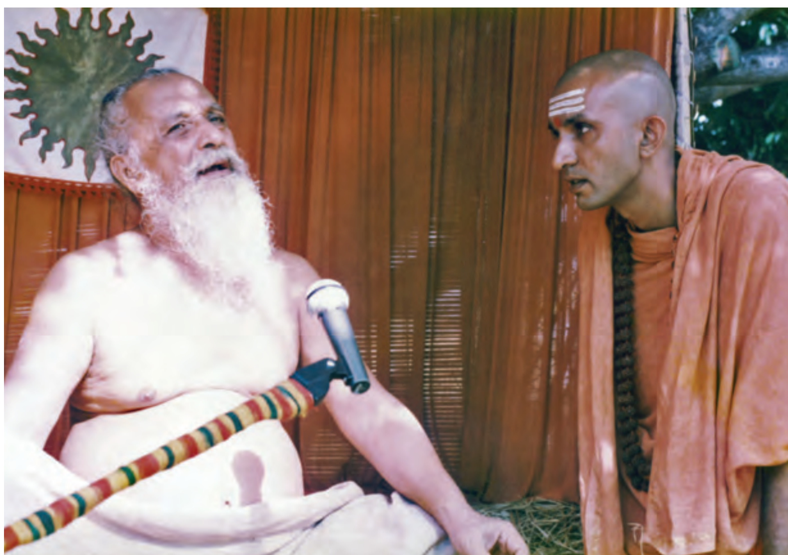
हमारे कर्म संसार में ही अभिव्यक्त होते हैं, क्योंकि यही हमारा क्षेत्र है। हम यहीं जीते हैं, रहते हैं, खाते हैं, मरते हैं। अगर हमें संसार में जीना है तो फिर कोई उपाय खोजना पड़ेगा कि हम अपने इस संसार को बेहतर, सुखद, सकारात्मक और रचनात्मक बना सकें। लेकिन संसार को सुखद बनाने से पहले अपने आप पर काम करो। बचपन में हम भी सपना देखा करते थे कि हम संसार को बदलेंगे। लेकिन आज सोचते हैं कि हमारा वह चिंतन गलत था। हमें पहले अपने आपको बदलना पड़ेगा। जिस व्यक्ति के मन में पूर्वाग्रह है, दुराग्रह है, वह संसार को कैसे बदल पाएगा? पहले वह अपने आपको तो ठीक करे।

## आध्यात्मिक साधना का प्रयोजन

यह संसार तो विषयों का भोग है, और कुछ नहीं। जिस प्रकार एक होटल में जाकर आप भोजन का उपभोग करते हो, एक सिनेमा में दृष्टि भोग के लिए जाते हो, उसी प्रकार से जब आदमी संसार में आता है तब विषयों का भोग करने के लिए ही आता है। यह संसार भोगप्रधान है और इसके कारण मन में चंचलता होती है, जीवन में उत्पात मचता है, व्यवहार में अराजकता आती है, मन में अशांति और असंतोष छा जाता है। इस संकीर्ण जीवन को हम तामसिक जीवन कहते हैं। जब मनीषियों ने योग के बारे में चिंतन किया था तब उनकी यही राय थी कि मनुष्य को तमस् से सत्त्व की ओर यात्रा करनी है और योग उसका माध्यम है।

संसार, माया, विषय, भोग, शरीर, सब तमस् की अभिव्यक्ति हैं। मन, बुद्धि और भावना तामसिक हैं। इनके परिणाम सब स्वार्थ के होते हैं। जो आदमी जितना अधिक तामसिक होता है, उतना अधिक स्वार्थी भी होता है, वह उतना ही अधिक अपने आपको बाहर की विषय-वस्तुओं से जोड़ता है। जैसे-जैसे जीवन में सात्त्विक अवस्था आने लगती है और तमस् कम होता जाता है, वैसे-वैसे मनुष्य में धीरे-धीरे निःस्वार्थता आने लगती है।

माया से हट तो नहीं सकते हैं। एक आत्मज्ञानी योगी भी संसार में माया के अधीन रहकर अपना कर्म करता है। वह भी शरीर और मन का धर्म निभाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने यही बात कही है। जब अर्जुन पूछता है कि एक सिद्ध पुरुष



किस प्रकार इस संसार में जीता है, तब श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि वह सामान्य व्यक्ति की तरह ही जीता है। फिर उनसे पूछा जाता है कि अगर वह सामान्य तरीके से जीता है, तो एक सिद्ध पुरुष और सामान्य पुरुष में अन्तर क्या है। कृष्ण जी कहते हैं, 'अन्तर यही है कि सामान्य पुरुष की बुद्धि और मन चंचल रहता है, जबकि सिद्ध पुरुष की बुद्धि में प्रज्ञा होती है। इसलिए उसकी बुद्धि स्थिर होती है, मन शांत रहता है।'

जब हम सात्त्विकता की ओर बढ़ना आरम्भ करते हैं, तब हमारे जीवन में जो परिवर्तन होता है, वह हमें संसार का द्रष्टा बनाता है। हमारा व्यवहार, आचरण, विचार और चिंतन, सब सामान्य होता है, लेकिन आन्तरिक चंचलता एवं उत्तेजना शांत हो जाती है। जैसे-जैसे मन शांत होता जाता है, वह सत्त्व को ग्रहण करने लगता है। अशांत मन कभी सत्त्व को ग्रहण नहीं कर सकता।

उदाहरण के लिए एक तालाब का दृष्टान्त ले सकते हो। अगर तालाब की सतह पर पानी चंचल हो तो उसपर कोई भी दृश्य नहीं दिखलाई देगा। लेकिन अगर तालाब का जल स्थिर हो जाए, उसमें चंचलता न हो, तो बादलों, वृक्षों, पर्वतों, तारों का प्रतिबिम्ब उस जल में साफ-साफ दिखलाई देगा। उसी प्रकार जब मन चंचल होता है तब स्पष्टता नहीं होती कि हमें क्या करना चाहिए,

क्या नहीं। *'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः'* ऐसा भाव उत्पन्न होता है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति आती है और संसार में ऐसी जितनी भी अवस्थाएँ हैं, वे मनुष्य को भौतिकता की ओर खींचती हैं।

आध्यात्मिक साधनाओं का यही प्रयोजन है कि तुम अपने आपको भौतिकता के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त करो, ताकि इस संसार में रहते हुए भी अपने जीवन की अन्तर्निहित प्रतिभा, शक्ति और क्षमता का सदुपयोग कर पाओ। यही जीवन का वास्तविक उद्देश्य है, आत्म-साक्षात्कार या ईश्वर-दर्शन नहीं। वह अपने आप होता है, उसके लिए प्रयास करने की जरूरत नहीं। अगर तुम्हें भूख लगी है, तो भूख मिटाने के लिए क्या करोगे? पहले भोजन बनाओगे न? बन जाने के बाद खाओगे। भोजन बनाना और खाना, इससे भूख स्वाभाविक रूप से दूर हो जाएगी। लेकिन जब तक बनाओगे नहीं, खाओगे नहीं, तब तक भूख बढ़ती रहेगी, चाहे तुम कितना भी सोचते रहो कि भूख को कैसे मारूँ? भोजन बना नहीं रहे हो, खा नहीं रहे हो, तो फिर सोचने से क्या फायदा?

यही सिद्धान्त जीवन में अपने आराध्य के सम्पर्क में आने के लिए लागू होता है। पहले इस सम्बन्ध को स्थापित करने में जो बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें दूर करो। जब बाधाओं को तुम दूर कर लोगे, तब अपने आप ही सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा, उसके लिए ज्यादा सिर मारने की जरूरत नहीं।

## योगविद्या का विकास

इसी चिंतन से प्रेरित होकर मनीषियों ने योगविद्या का विकास किया। वे यह जानते थे कि जीवन में चंचलता के अनेक स्तर, अनेक रूप होते हैं। एक होती है विचारों की चंचलता, जिससे मन प्रभावित होता है; दूसरी है वासनाओं की चंचलता, जिसके कारण भावना प्रभावित होती है; तीसरी है इन्द्रियों की चंचलता, जिसके कारण शरीर प्रभावित होता है। हमारे जीवन के अनेकों स्तरों पर जो चंचलता है, उसे कैसे शांत किया जाए?

हमारे मनीषियों ने निर्देश दिया कि इन्द्रियों से सम्बन्धित चंचलता के लिए हठयोग; मन से सम्बन्धित चंचलता के लिए राजयोग; भावनाओं से सम्बन्धित चंचलता के लिए भक्तियोग; अपने आचरण, व्यवहार एवं कर्मों की चंचलता के लिए कर्मयोग तथा अपनी बुद्धि की चंचलता को शांत करने के लिए ज्ञानयोग का अभ्यास करो। अगर मनुष्य में बुद्धि, भावना और कर्म

की प्रतिभा है, तो इन सभी स्तरों को एक साथ जाग्रत करने के लिए अभ्यासों का एक सुन्दर समन्वय होना चाहिए।

अगर तुम पचास साल तक केवल आसन करते रहोगे तो शरीर बेशक लचीला हो जाएगा, बुढ़ापे में कड़ापन नहीं आएगा, लेकिन उसके आगे क्या होगा? अगर तुम सोचते हो कि आसन करने से मेरे चक्र जग जायेंगे, कुण्डलिनी जग जाएगी तो यह विचार गलत है। अगर तुम बल्ब का स्विच चालू करोगे तो उससे पंखा नहीं चलेगा। पंखा चलाने के लिए पंखे का स्विच चालू करना होगा। आसन करके कहते हो कि कुण्डलिनी नहीं जगती। कैसे जगेगी? उसका वह प्रयोजन ही नहीं है। हमारे मनीषियों ने बहुत सोच-विचार कर एक क्रमिक साधना का विकास किया और इस क्रमिक साधना में जो अलग-अलग अभ्यास शामिल हुए हैं, वे अलग-अलग योगांगों के नाम से जाने गए हैं।

## हठयोग – शारीरिक स्वास्थ्य की कुंजी

हठयोग का क्या प्रयोजन है? शरीर को लचीला बनाना नहीं, बल्कि हठयोग नाम में ही इसका प्रयोजन स्पष्ट किया गया है। जब लोग 'हठ' नाम सुनते हैं, तब अन्दाज लगाते हैं कि शायद अपने साथ जोर-जबरदस्ती करनी है, हठ करना है। किंतु ऐसी बात नहीं है। वास्तव में हठ शब्द 'हं' और 'ठं', इन दो मंत्रों से बना है। 'हं' प्राण शक्ति का बीज मंत्र है और 'ठं' चित्त शक्ति का। जहाँ पर प्राण और चित्त, दोनों का योग हो जाए, उसे हठयोग कहते हैं।

हठयोग स्कूल की प्राइमरी क्लास की तरह है। योग रूपी स्कूल में प्रवेश ध्यानयोग या क्रियायोग या कुण्डलिनीयोग से नहीं, हठयोग से होता है। यौगिक शिक्षा में तुम्हारा प्रवेश तब होता है जब तुम हठयोग प्रारम्भ करते हो, क्योंकि तुम्हारा शरीर एक स्थूल, भौतिक पदार्थ है, जिसे तुम आसानी से समझ सकते हो, अनुभव कर सकते हो। पर हठयोग मात्र आसनों का अभ्यास नहीं है। यह प्राण और चित्त शक्ति के समन्वय से सम्बन्ध रखता है। इस कारण हठ योग में बहुत-से ऐसे अभ्यास भी हैं जो शरीर को शुद्ध बनाते हैं, ताकि प्राणों का प्रवाह सुचारु रूप से हो सके। अगर किसी पुरानी बिजली की तार पर कार्बन जम जाए तो उस तार में विद्युत प्रवाह सुचारू रूप से नहीं हो पाएगा। उसी प्रकार जब हमारे शरीर के भीतर की नाड़ियों में विकार और विषाक्त तत्त्व जम जाते हैं, तब प्राणों का संचार बाधित होता है। जिस अंग में प्राणों का संचार बाधित होता है, वह रोगग्रस्त हो जाता है।

एक उदाहरण देता हूँ। अगर बहुत देर तक एक ही स्थिति में बैठे रहते हो तो पैर सोता है कि नहीं? ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि रक्त-संचार बाधित हो गया और रक्त-संचार के बाधित होने से पैर शून्य हो गया। जब उठना हो, तो पहले कुछ समय तक पैर को रगड़ो, झटका दो, टेढ़ा करो, मोड़ो, ताकि धीरे-धीरे रक्त-संचार शुरू हो। उसके बाद जब पैरो में शून्यता खत्म होगी तब तुम चल सकते हो। जिस प्रकार से रक्त-संचार के अभाव में एक अंग निष्क्रिय होता है, उसी प्रकार से प्राण-संचार के अभाव में भी निष्क्रियता आती है, रोग उत्पन्न होता है। इसलिए हठयोग में कहा गया है कि शरीर में प्राण का संचार सुचारु रूप से होना चाहिए, ताकि मनुष्य अपने जीवन में हमेशा स्वास्थ्य का अनुभव कर सके।

शारीरिक स्वास्थ्य योगियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण चीज थी। अगर शरीर ही बीमार पड़ जाए तो तुम किसी भी तरह का यौगिक अभ्यास कैसे कर पाओगे? दमे के दौरे के बीचोबीच ध्यान का अभ्यास करने की कोशिश करो, नहीं कर पाओगे। हर्निया या अल्सर की स्थिति में कुण्डलिनी जगाने की कोशिश करो, सम्भव नहीं। तुम्हारा मन अभ्यास की बजाय समस्या की ओर जाएगा। इसलिए योगियों ने शारीरिक स्वास्थ्य को परमावश्यक माना और इस स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए उन्होंने हठयोग के विज्ञान का विकास किया। हठयोग के अंतर्गत आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्रा और बन्ध जैसे विभिन्न अभ्यास आते हैं, जिनका उद्देश्य प्राण और चित्त शक्ति में संतुलन और सामंजस्य लाना है।

चित्त शक्ति मन की ऊर्जा है। उसी के बल पर हम चिंतन करते हैं, इन्द्रियों के अनुभव ग्रहण करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं। अगर यह ऊर्जा बाधित हो जाएगी तो मन निष्क्रिय हो जाएगा। बहुत बार जब आप लोग काम करते-करते थक जाते हो, तब कोई आदमी अगर कुछ पूछता है तो आप कहते हो, 'नहीं, अभी कुछ मत पूछो, हम थके हैं।' यह चित्त शक्ति की कमी को दर्शाता है। अगर चित्त शक्ति ठीक रहेगी तो कोई आदमी कभी भी आप से कुछ भी पूछ ले, आप उसका तुरन्त उत्तर दोगे।

हठयोग का प्रयोजन प्राण और मन का सही तरीके से संयोग है। जब यह संयोग सही तरीके से होता है तब मनुष्य शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का अनुभव करता है। हठयोग के माध्यम से शरीर और मन के विकार निकल जाते हैं, शरीर और मन की कब्जियत दूर हो जाती है।

## राजयोग – मन का प्रबन्धन

जैसे शरीर में कब्जियत होती है, वैसे मन में भी होती है। शरीर में कब्जियत हो तो बड़ा खराब लगता है न? शरीर का यह धर्म है कि जो भी तुम ग्रहण करते हो उसे वह पचाता है और फिर निकालता है। यही मन का भी धर्म है। जो कुछ मन ग्रहण करता है, उसे वह पचाता है और फिर निकालता है। लेकिन आप उसको निकालने नहीं देते। आप उसको वहीं पर रोक लेते हो। यह मानसिक कब्जियत अंत में मानसिक दस्त का रूप ले लेती है। हमारा मन इन्हीं दो अवस्थाओं के बीच झूलता रहता है, कभी मन में कब्जियत रहती है तो कभी दस्त।

मन की इन विकृत अवस्थाओं को व्यवस्थित करने के लिए राजयोग का अभ्यास किया जाता है। लोग कहते हैं कि राजयोग ध्यान सिखाता है। पर राजयोग ध्यान का नहीं, मनोनियंत्रण का तरीका है। ध्यान तो इसके सातवें चरण में आता है। राजयोग के पहले छ: चरण मनुष्य को अपने मन एवं आचरण के प्रति सजग बनाते हैं और उन्हें व्यवस्थित करने के लिए प्रेरित करते हैं।

राजयोग को भले ही लोग अष्टांग योग कहते हैं, लेकिन वास्तव में देखा जाए तो यह षडंग योग है। यम, नियम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये मन के लिए अभ्यास हैं। इनमें जो आसन और प्राणायाम शामिल किये गये हैं, वे आपको ध्यान की स्थिति में और गहराई में ले जाने के लिए आते हैं। राजयोग के आसन गत्यात्मक नहीं हैं। *'स्थिरसुखमासनम्'* – महर्षि पतंजलि के अनुसार आसन उसे कहते हैं, जिसमें एक लम्बे समय तक स्थिरपूर्वक बैठ सकते हैं। ऐसे आसनों का प्रयोजन क्या है? शरीर स्थिर हो जाए, शरीर में किसी प्रकार का कड़ापन, झंझट, परेशानी न हो, ताकि आप अपने मन को अन्तर्मुखी बना सको। वैसे ही प्राणायाम के साथ है। पतंजलि ने केवल चार प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख किया है, श्वास लेना एक प्राणायाम, श्वास छोड़ना दूसरा, श्वास को अन्दर रोकना तीसरा और, बाहर रोकना चौथा। अब श्वास लेना, रोकना, छोड़ना, रोकना, अगर इसे हम प्राणायाम कहें, तो फिर बाकी क्या हैं?

महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट किया कि अपनी मानसिक अवस्थाओं की पहचान तुम श्वास के आधार पर कर सकते हो। जब तुम चंचल हो तब तुम्हारी श्वास तीव्र गति से चलेगी। जब तुम अशांत हो तब तुम्हारी श्वास की गति दूसरी



होगी। जब तुम स्थिर और शांत बैठे हो तब तुम्हारी श्वास लम्बी, धीमी, गहरी होगी। महर्षि पतंजलि के लिए श्वास को लम्बा, धीमा, गहरा करना प्राणायाम है। अभी आप औसतन एक मिनट में ग्यारह-बारह श्वास लेते हो। अगर एक मिनट में एक श्वास लोगे, तीस सैकेण्ड श्वास लेने में, तीस सैकेण्ड श्वास छोड़ने में लगाओगे तो यह महर्षि पतंजलि का प्राणायाम है। उसमें नाक पकड़ने की आवश्यकता भी नहीं।

हठयोग में जो प्राणायाम हैं, वे गत्यात्मक हैं, लेकिन राज योग में पतंजलि ने जिस प्राणायाम की चर्चा की है, वह मन की शांति और अन्तर्मुखता को बढ़ाने के लिए है। इसलिए उन्होंने अष्टांग योग में आसन और प्राणायाम की चर्चा ध्यान के सन्दर्भ में की है, एक शारीरिक अभ्यास के रूप में नहीं। उन्होंने कहा है कि मानसिक चंचलता को शांत करने के लिए इस विधि का पालन करो और स्पष्ट किया है कि राजयोग का प्रयोजन 'चित्तवृत्ति निरोध' अर्थात् मन की चंचल अवस्थाओं को शांत करना और एकाग्रता को प्राप्त करना है

ध्यान को तुम जितनी गहराई में ले जा सकते हो, ले जाओ। अन्त तक ले जा सकते हो तो समाधि होगी। समाधि कोई अलग चीज नहीं है। देखा

जाए तो रोज रात को जब हम सोते हैं, वह स्थिति समाधि की भाँति है। शरीर, स्थान, समय का ख्याल नहीं रहता। आदमी जब आठ घण्टे सोता है तो कहाँ जाता है? निद्रा की अवस्था में चेतना की, मन की क्या स्थिति होती है? मन कहाँ विलीन हो जाता है? मन की अनुभूतियों का लय कहाँ होता है? ध्यान की अन्तिम अवस्था में मन की समस्त अनुभूतियों का लय होता है। सब चित्तवृत्तियाँ शांत हो जाती हैं, कोई भी चंचलता शेष नहीं रहती। तब वह स्थिति समाधि कहलाती है। जब तुम्हारे भीतर चंचलता का कारण बनने लायक कोई बीज नहीं रहता, तब वह स्थिति समाधि कहलाती है। जब तक बीज रहता है, जिसके कारण तुम बाहर-अंदर होते रहते हो, तब तक वह स्थिति ध्यान कहलाती है।

**भक्तियोग – भावनाओं का दिशान्तरण**

जिस प्रकार शरीर एवं इन्द्रियों की चंचलता को शांत करने के लिए हठयोग और मन के लिए राजयोग है, उसी प्रकार भावनाओं के लिए भक्तियोग है। लोग अक्सर भक्ति और भक्तियोग को समानार्थी समझते हैं, लेकिन दोनों में अन्तर है। भक्ति श्रद्धा-विश्वास की अभिव्यक्ति है, जबकि भक्तियोग भावनाओं का दिशान्तरण है। अभी जो भावनाओं का प्रवाह संसार और संसार के विषयों की ओर हो रहा है, उस धारा के प्रति तुम सजग हो जाओ और देखो कि उस प्रवाह से तुम्हारे भीतर क्या प्रतिक्रिया प्रकट होती है।

भावना और कुछ नहीं, ऊर्जा का ही गत्यात्मक स्वरूप है। क्रोध क्या है? प्राणशक्ति की बाहर की ओर विस्फोटक अभिव्यक्ति जिसे तुम नियंत्रित या दिशांतरित नहीं कर पाते। विषाद क्या है? प्राणशक्ति का अन्दर की ओर विस्फोट। ये शक्तियाँ परिष्कृत नहीं होतीं, बल्कि एक जंगली हाथी की तरह प्रबल और अनियंत्रित होती हैं। मनुष्य इन्हें काबू में नहीं ला सकता। लोभ पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता। वासना, विषाद, भय या क्रोध को भी नियंत्रित नहीं किया जा सकता। ये सभी भावनाएँ बेकाबू शक्तियाँ हैं।

भावनाएँ तुम्हें उन चीजों के साथ जोड़ती हैं जिन्हें तुम अपना समझते हो। जो भावना अपने परिवार के लिए होती है, वह अपने पड़ोसी के परिवार के लिए नहीं होती, क्योंकि वहाँ अपनेपन का भाव नहीं है। मित्रता हो सकती है लेकिन अगर तुम्हारे पड़ोसी के बेटे को बुखार हो जाए तो तुम्हें कोई विशेष चिंता नहीं होगी। वहीं तुम्हारे अपने बेटे को बुखार हो जाए तो तुम रात भर जगे

रहोगे। भावनाएँ तुम्हारे चारों ओर एक सीमित संसार खड़ा कर देती हैं – 'यह मेरा है, वह तुम्हारा है। मुझे यह व्यक्ति पसन्द है, वह पसन्द नहीं है।' इस प्रकार तुम्हारी भावनाएँ ही तुम्हारे संसार की रचना करती हैं।

जब तुम किसी बच्चे को देखते हो तब स्नेह की भावना उत्पन्न होती है। जब तुम धन को देखते हो तब लोभ की भावना आती है। जब तुम अपने से ज्यादा समृद्ध व्यक्ति को देखते हो, तब ईर्ष्या की भावना होती है। जब तुम किसी दरिद्र या दु:खी को देखते हो तब दया की भावना जागती है। जब तुम अपने दोस्त को देखते हो तो मित्रता की भावना होती है। कहने का मतलब, भावना की धारा संसार की ओर बह रही है। वही हमें लोभ, लालच, काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आदि सब अनुभव दिलाती है। जब यह भावना प्रबल होती है, तब मनोरोग का रूप लेती है। भावना के कारण मन की अभिव्यक्ति दूषित होती है। हमें इसी का दिशान्तरण करना है।

हमारे गुरुजी कहते थे कि अगर तुम्हें बहती नदी के प्रवाह को बदलना हो, तो क्या करोगे? दूसरा मार्ग खोलोगे और पहली धारा को रोक दोगे। भावनाओं के प्रबन्धन के लिए भक्तियोग का भी यही सिद्धान्त है। अभी जो भावनाएँ नकारात्मकता और तामसिकता की ओर जा रही हैं, उन्हें रोककर आत्मा की ओर मोड़ दो। आत्मा की ओर मोड़ने का मतलब, अपने भीतर जो चेतना है, परम-तत्त्व है, गुरु-तत्त्व है, उससे अपने आप को जोड़ो।

जब सांसारिक तत्त्वों से भावना जुड़ती है तब काम, क्रोध, लोभ, आदि षड्विकार उत्पन्न होते हैं। जब आत्म-तत्त्व से भावना जुड़ती है तब उसमें अपनेपन का, आत्मभाव का अनुभव होता है। यही भक्तियोग का प्रयोजन है।

तुम ध्यान की अवस्था में एक प्रयोग आजमा सकते हो। ध्यान के दौरान अपने बेटे या पति या पत्नी का ख्याल करके देखो। तुरंत तुम्हारे मन में एक भावनात्मक प्रतिक्रिया उठेगी। फिर अपने हृदय या चिदाकाश में ध्यान केन्द्रित करके कुछ देर के लिए भावनारहित हो जाओ। तुम्हें गहन शांति का अनुभव होगा क्योंकि उस समय तुम्हारी भावना किसी ऐसी चीज से नहीं जुड़ी है जिससे तुम्हारा तादात्म्य है। जब भावना का सम्बन्ध सब ओर से कट जाता है तब शांति और सौम्यता का अनुभव होता है। भक्तियोग का उद्देश्य भावनाओं की विकृतियों का ही प्रबन्धन है।

हमारी परम्परा में नवधा भक्ति का वर्णन आया है। जिस तरह राजयोग अष्टांग योग है उसी तरह भक्तियोग नवांग योग है। *'प्रथम भगति संतन्ह*

*करि संगा'*– इस योग की शुरुआत एक सकारात्मक मानसिकता के विकास से होती है। जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास के साथ तुम अपनी भावनाओं को बेहतर ढंग से अभिव्यक्त कर सकते हो, उन्हें बाह्य सम्बन्धों से अप्रभावित रख सकते हो। इस तरह तुम भक्तियोग के विभिन्न स्तरों से गुजरते हुए अंत में भावनात्मक संतुलन और शांति का अनुभव करते हो। जिस तरह राजयोग में साधक यम के अभ्यास से प्रारम्भ कर समाधि के स्तर पर पहुँचता है, उसी तरह भक्तियोग की यात्रा सत्संग से शुरू होकर सान्निध्य में समाप्त होती है। सान्निध्य वह शुद्ध स्थिति है जिसे तुम तब अनुभव करते हो जब तुम्हारी सभी भावनाएँ नियंत्रित होकर रचनात्मक ढंग से अभिव्यक्त होने लगती हैं। जैसे राजयोग बुद्धि और मन का प्रबन्धन है, वैसे ही भक्तियोग भावनाओं का प्रबन्धन है। शरीर के लिए हठयोग, मन के लिए राजयोग और हृदय के लिए भक्तियोग– ये तीन योगांग मुख्य हैं।

## क्रियायोग – आत्मा की जागृति

आध्यात्मिक जागरण के लिए क्रियायोग की प्रणाली उपयोग में लाई जाती है। जो साधक क्रियायोग में पारंगत हुए, वे सिद्ध बने क्योंकि उन्हें प्रकाश और प्रज्ञा की प्राप्ति हुई। आप लोगों ने बाबाजी का नाम सुना होगा, जो नित्य-युवा महात्मा हैं। वे क्रियायोग के सिद्ध पुरुष हैं। आध्यात्मिक जागृति के बाद प्राणशक्ति पर नियंत्रण हो जाता है। तुम उस प्राणशक्ति से शरीर की मृत कोशिकाओं को पुनर्जीवित कर सकते हो, शरीर को जरामुक्त रख सकते हो। क्रियायोग की सिद्धि का यह स्वाभाविक परिणाम है। पूरे शरीर का कायाकल्प हो जाता है, क्योंकि शरीर की सभी प्रणालियों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है।

जब तुम इस उच्च अवस्था को प्राप्त करते हो, जहाँ अपनी चित्त और प्राण शक्ति की सभी क्षमताओं का प्रयोग कर सकते हो, तब तुम जरा, व्याधि और मृत्यु से अप्रभावित रहते हो। लेकिन यह क्रियायोग का प्रयोजन नहीं, मात्र एक स्वाभाविक परिणाम है। क्रियायोग को मात्र एक अभ्यास के रूप में नहीं बल्कि साधना के रूप में समझना चाहिए। कहीं ऐसा मत सोचने लग जाना, 'स्वामीजी ने कहा है कि क्रियायोग एक अद्भुत साधना है जिससे उम्र बढ़ाई जा सकती है, इसलिए अब हर दिन मैं इसका अभ्यास करूँगा और रोज शीशे

में देखूँगा कि मेरे चेहरे की झुर्रियाँ कम हुई या नहीं।' यह एक योगी का लक्षण नहीं है। योगी वह होता है जो सिद्धि और साक्षात्कार के लिए साधना करता है, अपने शरीर को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए नहीं।

शरीर, मन, भावना और आत्मा – इन चारों आयामों की जागृति और सिद्धि के लिए यौगिक परम्परा में योग की इन चार प्रमुख प्रणालियों की चर्चा की गई है, जिन्हें बहिरंग योग के नाम से भी जाना जाता है।

## ज्ञानयोग – आन्तरिक अन्वेषण

बहिरंग योग के अलावा अंतरंग योग भी है, जिसमें सबसे पहले ज्ञानयोग आता है। लोग सोचते हैं कि ज्ञानयोग तो योग का दार्शनिक पक्ष है, जिसमें केवल सोचते रहो कि 'मैं कौन हूँ।' यह सोच सही नहीं है। पहले यह जान लो कि तुम अभी किस अवस्था और परिस्थिति में हो। यह मत सोचो कि मैं ब्रह्म हूँ, ईश्वर हूँ, आत्मा हूँ या परमात्मा का अंश हूँ, क्योंकि जिस चीज को तुम अनुभव नहीं कर सकते, उसके बारे में सोचने से क्या फायदा? तुम इस जीवन को अनुभव करते हो, इसके बारे में सोचो। ज्ञान के द्वारा, बुद्धि के द्वारा पता लगाओ कि तुम्हारे जीवन मे कौन-से सामर्थ्य, प्रतिभाएँ और क्षमताएँ हैं। पता लगाओ कि कौन-सी कमजोरियाँ हैं जो तुम्हें पीछे खींचती हैं। पता लगाओ कि कौन-सी वासनाएँ तुम्हारे जीवन को प्रभावित करती हैं और उनसे तुम कैसे मुक्त हो सकते हो। पता लगाओ कि तुम्हारे जीवन में अहंकार कितना प्रबल है। अपने आप को अपने व्यवहारों के माध्यम से देखना, समझना और जानना; अपनी विवेक-बुद्धि के बल पर मनोदशाओं को ठीक करना, यही ज्ञानयोग है।

आप जीवनभर बैठकर सोचते रहिये कि 'मैं ब्रह्म हूँ' या 'मैं ईश्वर का अंश हूँ', लेकिन वह चिन्तन आपके आंतरिक आचरण को कभी ठीक नहीं करेगा। अद्वैत की अनुभूति को बौद्धिक स्तर पर नहीं समझा जा सकता। यदि बौद्धिक स्तर पर समझने का प्रयास करोगे तो हार जाओगे।

एक साधक का उदाहरण देते हैं, जो हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी के पास आकर कहने लगा, 'मुझे वह ब्रह्म-ज्ञान दीजिए, जिससे मैं अपने और ईश्वर में एकत्व का अनुभव कर सकूँ।' गुरुजी ने कहा, 'तुम तैयार नहीं हो।' वह हठ करने लगा कि आप कैसे जानते हैं कि मैं तैयार नहीं हूँ। मुझे देकर तो देखिए। गुरुजी कहते हैं, 'ठीक है बेटा, तुम्हारा हठ है तो तुम जानना, पर बाद




में मुझे गाली मत देना।’ और उसे एक मंत्र की दीक्षा देते हैं, *‘अहं ब्रह्मास्मि’* और यह मंत्र देकर कहते हैं कि तुम चराचर जगत् में इसी भाव को रखो कि सब-कुछ ब्रह्ममय है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अगर एक वृक्ष को देखते हो, तो उसमें भी उसी अद्वितीय ईश्वरीय सत्ता को देखना। जहाँ-जहाँ भी दृष्टि जाए, मकान में, वृक्ष में, कीट-पतंगों में, जल में, वायु में, सर्वत्र उसी ब्रह्म को देखो।

शिष्य साधना करने लगा और ऐसी स्थिति में पहुँचा जहाँ ‘सियाराम मय सब जग जानी’ देखने लगा। एक दिन श्री स्वामीजी उससे कहते हैं कि आश्रम के लिए सब्जी खरीद कर ले आओ। शिष्य उसी भाव में थैले को उठाता है, और बाजार की आरे चल देता है। लेकिन जब वह बाजार की ओर जा रहा होता है, तब देखता है कि लोग वहाँ से भाग रहे हैं। शिष्य पूछता है, क्या हुआ? कोई कहता है कि एक हाथी पागल हो गया है, वह सबको रौंदते, कुचलते, सूँड़ में लपेटकर फेंकते चला आ रहा है, तुम भाग जाओ। शिष्य ने सोचा, ‘सांसारिक लोग हैं, छोटी-सी बात में डर जाते हैं। अरे! वह हाथी मेरा क्या बिगाड़ेगा? उसमें भी तो वही ब्रह्म है, वही ईश्वर है, जो मुझमें है। चलो, हाथी महाराज को देखते हैं।’

वह आगे बढ़ने लगा, लेकिन संयोगवश हाथी दार्शनिक मूड में नहीं था। हाथी ने देखा कि कोई मानव-पशु मेरी ओर बढ़ा आ रहा है। उसने उसे सूँड़ में उठाकर फेंक दिया और शिष्य महाराज के हाथ-पैर टूट गये। किसी तरह मलहम-पट्टी करवाकर वह रेंगते हुए आश्रम लौटा।

उसकी हालत देखकर गुरुजी ने पूछा कि क्या हुआ। शिष्य ने बतलाना शुरू किया, 'जब मैं बाजार जा रहा था तब एक आदमी आया और उसने मुझे पागल हाथी के बारे में चेतावनी दी। मैंने सोचा कि हाथी भी तो ब्रह्म है, और मैं आगे बढ़ते गया। अंत में जो परिणाम हुआ, सो तो आप देख ही रहे हैं।' गुरुजी ने शिष्य से मात्र एक बात कही – 'तुम्हारी साधना तो बहुत अच्छी है, लेकिन उसमें तुम एक बात भूल गये। जो आदमी तुम्हें चेतावनी देने आया था, क्या वह ब्रह्म नहीं था? अगर उस आदमी में तुम ब्रह्म को देखते, तो तुम्हारी यह हालत नहीं होती।'



यह तो केवल एक कहानी है, मगर इस बात को दर्शाती है कि साधक कई बार जोश में होश खो बैठते हैं। वे जीवन की वास्तविकताओं को नजर-अंदाज कर देते हैं। कई बार देखने में आता है कि नौसिखिये साधक संत-महात्मा का मुखौटा पहन लेते हैं। वे सोचते हैं, 'मैंने योगाभ्यास शुरू कर दिया है। अब मैं आध्यात्मिक बन गया हूँ। सब ओर शांति फैल गयी है।' यह गलत सोच है। साधक को व्यावहारिक रहना चाहिए। उसे जीवन में ज्ञान का सही उपयोग और प्रयोग करना चाहिए।

इस कहानी को बतलाने का यही उद्देश्य था कि मात्र बौद्धिक सोच-विचार तुम्हें वास्तविकता से दूर ले जाएगा। सोच-विचार हमारे

आन्तरिक संस्कारों को परिवर्तित नहीं कर सकता। पहले अपने संस्कारों को जानो, उनके साक्षी बनो और देखो कि मैं किस प्रकार अपने आप को अधिक व्यवस्थित और संतुलित कर पाता हूँ। यही ज्ञानयोग है।

ज्ञानयोग का प्रयोजन अपने स्वभाव की समझ और जानकारी प्राप्त करना है। तुम्हारे सामर्थ्य क्या हैं, कमजोरियाँ क्या हैं, आवश्यकताएँ क्या हैं, महत्त्वाकांक्षाएँ क्या हैं? संसार में जीने के लिए हम इन्हीं चार चीजों को अभिव्यक्त करते हैं। ज्ञानयोग की शुरुआत आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण और आत्म-परिष्कार से होती है। अगर तुम इन तीन प्रक्रियाओं को अपने जीवन में स्थान दे पाते हो तो मन की अशुद्धियाँ धीरे-धीरे विलीन होती जाएँगी। चेतना पर पड़ा माया का आवरण हट जाएगा और तुम्हारा आंतरिक प्रकाश चमक उठेगा।

## कर्मयोग – जीवन में सही दृष्टिकोण का विकास

हमारे मनीषियों ने आगे कहा है कि अपने कर्मों को कर्मयोग द्वारा ठीक करो। कर्म तो आदमी जीवनभर करता है, लेकिन जब उसी कर्म में तुम योग शब्द को जोड़ देते हो, तब कर्म का अर्थ बदल जाता है। सामान्य रूप से जब कर्मों से हमारा सम्बन्ध जुड़ता है, तब हमारे भीतर प्रतिक्रियाएँ शुरू होती हैं। बहुत-ही कम लोगों को हमने कर्मयोग करते देखा है, जबकि अनेकों को प्रतिक्रियात्मक आचरण अपनाते देखा है।

गीता में कृष्ण जी कहते हैं कि तुम कर्म करो, लेकिन परिणाम की इच्छा मत करो। अपेक्षारहित होकर कर्म करना किसी के लिए सम्भव नहीं है, लेकिन अपेक्षाओं को एक दिशा दी जा सकती है ताकि हमारे जीवन में अपेक्षा एक नकारात्मक रूप न लेकर उत्साहवर्द्धक प्रेरणा का रूप ले। वह प्रेरणा हमारे कर्मों को अच्छा करती जाए, सजाती जाए, शुद्ध करती जाए, परिष्कृत करती जाए। कर्मयोग वह तरीका है जिसके द्वारा तुम अपने कर्मों के नकारात्मक प्रभावों से मुक्त हो सकते हो।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आया और कहने लगा, 'स्वामीजी, मैं उच्च रक्तचाप से पीड़ित हूँ।' मैंने पूछा, 'इस उच्च रक्तचाप का कारण क्या है? इसकी शुरुआत कैसे हुई, याद है क्या?' उसने उत्तर दिया, 'हाँ, मुझे याद है। लगभग छ: साल पहले मैं सेवा-निवृत्त हुआ था। एक दिन सबेरे घर में चाय पीते हुए अखबार पढ़ रहा था और दूरदर्शन देख रहा था। मेरी बहू, जो उस

सुबह गुस्से में थी, कमरे में वैक्यूम-क्लीनर से सफाई कर रही थी। मैंने उसे दबी अवाज में बड़बड़ाते सुना कि मेरे ससुर दिनभर सोफे पर कुत्ते की तरह बैठे रहते हैं। मैंने उससे कुछ कहा तो नहीं लेकिन आज तक वह वेदना मेरे दिल में है। और मैं जानता हूँ कि मेरी व्याधि का यही कारण है। मैं इस बीमारी से छुटकारा पाने के लिए कौन-से अभ्यास करूँ?'

मैंने कहा, 'अभ्यास तो बाद में बतलाएँगे, पहले यह बताओ कि जब तुम्हारी बहू ने तुम्हें कुत्ता कहा तब तुम्हारे मन में किस प्रकार के कुत्ते का दृश्य आया?' उसने कहा, 'एक मरियल, सड़क-छाप कुत्ते का।' तो मैंने कहा, 'तुम्हारा रक्तचाप तुम्हारी बहू के कटाक्ष के कारण नहीं, बल्कि उस सड़क-छाप कुत्ते के कारण है जिसका चित्र तुमने अपने मन में बसा लिया है और जिसके साथ तुमने अपनी पहचान बना ली है।' उसने पूछा, 'स्वामीजी, तब इस समस्या से निपटने के लिए मैं क्या करूँ?' मैंने कहा, 'तुम यह सोचते रहो कि तुम एक कुत्ते हो, लेकिन सड़क-छाप कुत्ते के बजाय अपने आपको एक रईस मेमसाहब का कुत्ता मानो, जो वातानुकूलित घर में रहता है, जिसे समय पर अपना भोजन मिल जाता है, जो शान के साथ मोटर-गाड़ी में सफर करता है, और जिसके जीवन में कोई कमी नहीं है। अपने मन में यही भावना बनाए रखो और उस मरियल, सड़क-छाप कुत्ते की कल्पना निकाल फेंको।' एक महीने बाद वह व्यक्ति वापस आया। उसने कहा, 'स्वामीजी, मेरी उच्च रक्तचाप की बीमारी दूर हो गई।' तब तक मैं उस घटना को भूल भी चुका था। उसने मुझे याद दिलाते हुए कहा, 'मैंने आपके परामर्श का अनुसरण किया। मैं एक मेमसाहब का कुत्ता बन गया और अब मुझे उच्च रक्तचाप नहीं है!'

यह प्रतिपक्ष भावना का उदाहरण है, जिसे उस व्यक्ति ने प्रयुक्त किया और लाभ उठाया। यही कर्मयोग का सिद्धान्त भी है। जब तुम कर्म करते हो, तब अपनी परिस्थिति के प्रति एक प्रतिक्रिया अवश्य होती है और सामान्य रूप से वह नकारात्मक ही होती है। लेकिन अगर तुम उस वक्त विपरीत भावना को सामने ला पाओ, तो वह नकारात्मक परिणाम तुम्हें प्रभावित नहीं करेगा। तुम्हें कोई कुत्ता कहे या गधा, तुमपर कोई असर नहीं होना चाहिए। तुम्हारे अन्दर नकारात्मक प्रतिक्रियाओं को पलटने की क्षमता होनी चाहिए। प्रतिपक्ष भावना लाने की यह प्रतिभा, यह कला तुम्हें कर्मों के नकारात्मक प्रभावों से मुक्त कर देगी।

कमरतोड़ काम करने को ही कर्मयोग नहीं कहते। सुबह से शाम व्यस्त रहने को कर्मयोग नहीं कहते। आश्रम के संन्यासियों से पूछोगे तो हमेशा कहेंगे कि हम कर्मयोग कर रहे हैं। पर क्या उन्होंने कर्मयोग करते समय कभी अपना अवलोकन किया है? उनके मन में तो बस इस तरह के विचार उठते हैं, 'मुझे सड़क साफ करने के लिए यह झाड़ू क्यों पकड़ा दिया है? मुझसे शौचालय साफ करने के लिए क्यों कहा जा रहा है?' वे कर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया कर रहे हैं। जब तक प्रतिक्रिया है, वह कर्म है, कर्मयोग नहीं। उसी कर्म को अगर प्रसन्नता और आनन्द की भावना के साथ किया जाए तो वह कर्मयोग बन जाएगा।

वास्तविक कर्मयोग तभी सम्पन्न होता है जब तुम अपने पूर्वाग्रहों और प्रतिक्रियाओं से मुक्त होते हो। तब कर्म केवल कर्त्तव्य के रूप में किया जाता है। नहीं तो कर्म में हमेशा संघर्ष बना रहता है, जिससे असंतोष और अशांति ही पैदा होती है। दूसरी ओर, कर्मयोग में संतोष और शांति कर्मों के अभिन्न अंग बन जाते हैं। झाड़ू लगाने का काम अपने में कर्मयोग नहीं है। जिस भावना से, जिस दृष्टिकोण से वह काम किया जाता है, वही इस बात को निर्धारित करता है कि वह कर्मयोग है या नहीं। अगर झाड़ू लगाते समय तुम सोचते हो कि यह तुम्हारे लायक काम नहीं और असंतुष्ट रहते हो तो यह योग नहीं। योग तब होता है जब काम सहज और स्वाभाविक ढंग से किया जाता है, और उस काम के साथ कोई निरर्थक विचार या भाव नहीं जुड़े रहते।

आप लोगों को मिलारेप्पा की कहानी मालूम है न? उनके गुरु, मारपा ने उन्हें एक पहाड़ पर मकान बनाने के लिए कहा, जिसके लिए मिलारेप्पा को घाटी से बड़े-बड़े पत्थर उठाकर पहाड़ के शिखर तक ले जाने पड़े। जब मकान तैयार हो गया तो मारपा ने कहा, 'मुझे यह जगह पसंद नहीं। मकान नीचे घाटी में बेहतर रहेगा। इन सन पत्थरों को नीचे ले जाओ और वहाँ एक नया मकान बनाओ।'

अगर तुम मिलारेप्पा की जगह होते तो क्या करते? तुम कहते, 'यह क्या नाटक है! पहले मुझसे ये भारी-भरकम पत्थर पहाड़ के ऊपर ले जाए गए और अब नीचे! मेरे गुरु को मेरा कोई भी काम पसंद क्यों नहीं आता?' और अपने गुरु को छोड़कर चले जाते। लेकिन मिलारेप्पा ने प्रतिपक्ष भावना का प्रयोग किया। उसके मन में कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं हुई। उसने सोचा, 'अगर

मेरे गुरु का यही आदेश है तो मैं ऐसे ही करूँगा।' कर्मयोग की इसी भावना ने मिलारेप्पा को महान् बनाया।

दिन में चौबीस घण्टे काम करना और फिर यह कहना कि मैं कर्मयोग करते-करते थक गया हूँ, वास्तव में कमयोग नहीं है। कर्मयोग प्रतिपक्ष भावना का विकास है जिसके द्वारा तुम अपने कर्म, व्यवहार और प्रतिक्रियाओं से अप्रभावित रह सकते हो। तब नकारात्मक होने की बजाय तुम्हारी सभी अभिव्यक्तियाँ सकारात्मक और प्रेरणाप्रदायक होती हैं। यही कर्मयोग है – कर्मों के प्रभावों को संभालने की क्षमता।

योग के ये छ: प्रमुख अंग हैं जिनका प्रयोजन मानव प्रतिभा का विकास और उसकी समुचित अभिव्यक्ति है। योगियों ने इन योगांगों को एक जीवनशैली और एक अनुशासन के रूप में प्रस्तुत किया, जिसके माध्यम से जीवन के सौन्दर्य का अनुभव किया जा सके।

## योग का वास्तविक उद्देश्य

सभी योगांगों का अपना निश्चित प्रयोजन है, जो उस योगशास्त्र में लिखा हुआ है। हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, क्रियायोग, कुण्डलिनीयोग, मंत्रयोग, लययोग, सब का प्रयोजन निश्चित किया गया है। जब मनीषियों ने इस प्रकार का चिन्तन किया और धीरे-धीरे इन विधियों का प्रचार किया, तब पाया कि जो योग साधक इन विधियों का लगन से अनुसरण करते थे, वे योग के लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम भी होते थे। इसलिए योगविद्या को एक विज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया। इसका व्यावहारिक परिणाम व्यक्ति खुद अपने जीवन में देख सकता है, अनुभव कर सकता है। यह दर्शन का नहीं, बल्कि विज्ञान का विषय है।

जब धीरे-धीरे जीवन परिष्कृत होता है, तब जीवनशैली भी बदल जाती है। इसलिए योग को एक जीवन पद्धति के रूप में भी देखा गया। जैसे तुम स्कूल जाते हो, पढ़ाई करते हो और परीक्षा में पास होते हो, तो तुम्हारी जीवनशैली बदलती है कि नहीं? जिस जीवनशैली को तुमने बचपन में जिया, पढ़ाई खत्म करने के बाद वह जीवनशैली बदल जाती है। सोच, चिंतन, दृष्टिकोण बदल जाता है। धीरे-धीरे आदमी में परिपक्वता आती है।

अब रही बात आधुनिक संदर्भ में। व्यक्ति योग में क्यों आता है? हम पिछले चालीस साल से योग से जुड़े हैं, योग के प्रचार और प्रशिक्षण का कार्य करते आ



रहे हैं। यह काम ऐसे समय में किया जब दुनिया में कोई योग को जानता तक नहीं था। आजकल तो हजारों की तादाद में योग के जानकार और शिक्षक झोला-किताब लेकर सड़कों पर घूमते हैं कि मैं किसको पकड़कर योग सिखाऊँ, लेकिन हम उस समय की बात कर रहे हैं जब कोई योग के बारे में नहीं जानता था। विदेश में लोग कहते थे, 'ओह! यह तो दूसरा धर्म है।' भारतवासी कहते थे, 'अरे, योग करने से तो तुम संसार से विमुख हो जाओगे, मत करो।' हर कदम पर हमने विरोध का सामना किया है। ऐसी परिस्थितियों में योग का प्रचार हुआ।

आज जब लोग योग की ओर आकृष्ट होते हैं तो क्यों? बीमारी के कारण। आजकल की जीवनशैली में आदमी अपने लिए समय नहीं खोज पाता है। सबेरे से ही भागदौड़ और चिंता शुरू हो जाती है। जब तक रात को बारह बजे हम बिस्तर पर खर्राटे नहीं लेने लगते तब तक वह परिस्थिति बनी रहती है। अगर आपसे हम कहें कि कुछ समय निकाल कर योग करो, तो ठीक है एक दिन कर लोगे, एक सप्ताह कर लोगे, एक महीना कर लोगे पर फिर तो वह छूटता ही है।

जब आदमी परेशान होता है, चाहे वह बीमारी के कारण हो या तनाव के कारण, तभी जाकर वह योग का आश्रय लेता है। ऐसा आदमी जब योग का आश्रय लेता है, तब उसका एकमात्र प्रयोजन होता है कि मैं अपनी समस्या का किसी तरह समाधान खोजूँ। अगर किसी को दमा है, तो वह योग को एक उपचार के रूप में स्वीकार करता है। जब उसका दमा ठीक हो जाता है तब वह योग भी छोड़ देता है। कहता है, 'मैं ठीक हो गया हूँ, अब क्यों करना?' कोई तनावमुक्त होना चाहता है, इसलिए दस मिनट आँखों को बन्द कर अपने विचारों का द्रष्टा बन जाता है। जब तनावमुक्ति का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है तब ध्यान भी छूट जाता है। अधिकांश लोग अपने एक प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए ही योग के प्रति आकर्षित होते हैं। जब वह प्रयोजन सिद्ध हो जाता है तब योग पीछे छूट जाता है। ऐसे में हम योग की सम्पूर्ण शिक्षा नहीं ले पाते।

योग में हर व्याधि या बीमारी का उपचार नहीं है। अगर कोई ऐसा कहता है तो गलत कहता है, क्योंकि योग कोई उपचारात्मक विज्ञान या विषय नहीं है। हमारा अपना अनुभव रहा है कि अगर जीवनशैली ठीक हो जाएगी तो रोग स्वत: दूर हो जाएँगे। लेकिन अगर जीवनशैली ठीक नहीं होगी, तो तुम कितने ही प्रयास क्यों न करो, ठीक होने के बाद दुबारा गिरोगे। इसलिए योग को हम एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति नहीं मानते, जैसे आज का समाज मानता है। हमारे गुरुजी हमेशा यह बात कहते थे कि तुम योग द्वारा अपने आप को ठीक भले ही कर लो, लेकिन तुम्हारी योग-यात्रा समाप्त नहीं होनी चाहिए। उसके आगे भी तुम्हें चलते रहना है।

व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए योग में आता है। एक महीने, दो महीने, छ: महीने, साल भर योगाभ्यास करता है और फिर छुट्टी। फिर चार-पाँच साल बाद जब दुबारा गिरने लगता है, कमजोर होने लगता है, तब सोचता है, 'जब मैं योगाभ्यास करता था तब मुझे अच्छा लग रहा था। अब क्यों न मैं फिर से शुरू कर दूँ?' इसे योग साधना नहीं कहते। तुम योग के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि अपने ही प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए अभ्यास कर रहे हो।

## योग का विकास-क्रम

हम योग को मात्र एक अभ्यास नहीं मानते, बल्कि 'निरंजनानंद योग संहिता' में योग को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है – अभ्यास, साधना,

जीवनशैली और संस्कृति। हम योग को इन्हीं चार रूपों में देखते हैं, और यही योग के विकास का स्वाभाविक क्रम भी है। पहले व्यक्ति योगाभ्यासी होता है, उसके बाद योग साधक होता है। उसके बाद योग जीवनशैली होती है और अंत में योग संस्कृति बनती है। आज जितने भी योग के केन्द्र हैं, वे सब योगाभ्यास केन्द्र हैं, योग साधना केन्द्र नहीं। तुम वहाँ सप्ताह में एक बार, दो बार या सात बार जाते हो, तीन-चार महीने अभ्यास करते हो, फिर उसके बाद तुम्हारा जीवन ज्यों-का-त्यों चलता रहता है। यह प्रथम चरण है, योग का अभ्यास।

विदेशी लोग तो ऐरोबिक के रूप में भी योगाभ्यास करते हैं। अगर आपको किसी विदेशी योगा स्टूडियो में जाने का अवसर मिलेगा, तो देखोगे कि वहाँ की दीवारों में पूरा काँच लगा हुआ है ताकि योगाभ्यासी अपने आप को देख सकें कि कैसे कर रहे हैं, गलत या सही। सप्ताह में तीन-चार बार वे वहाँ चले जाते हैं, थोड़ा व्यायाम करके चले आते हैं और कहते हैं, आज शरीर बहुत लचीला लग रहा है, आज कहीं कड़ापन या तनाव नहीं है, आज घुटनों में दर्द नहीं है, अच्छा लग रहा है। 99.99% लोग इसी किस्म के योगाभ्यासी होते हैं।

जो 0.01% का शेष समूह है, वह योग साधकों का है। योग साधक का मतलब ऐसा व्यक्ति जो सोचता है कि योग में जो लक्ष्य निश्चित किया गया है, उसे मैं अनुभव करूँ। अगर राजयोग कहता है कि उसका प्रयोजन चित्तवृत्ति-निरोध है तो ठीक है, मैं बैठकर चित्तवृत्ति-निरोध का प्रयास करता हूँ। यह कैसे सम्भव है? मैं उसे कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? उसका क्या अनुभव होता है? मैं इस मार्ग पर आगे कैसे बढ़ सकता हूँ? मुझे कहाँ पर बाधा मिलेगी? अगर क्रियायोग का प्रयोजन कुण्डलिनी को जगाना है, तो मैं उसे आजमाऊँगा और जब तक कुण्डलिनी नहीं जगेगी तब तक मैं निष्ठा, नियम और अनुशासन के साथ अभ्यास करता रहूँगा। अगर हठयोग का प्रयोजन प्राणिक और मानसिक ऊर्जा का योग है तो मैं उसे तब तक करते रहूँगा जब तक मैं इस योग का अनुभव न कर लूँ। जो व्यक्ति अपने शरीर या मन की बिमारी को ठीक करने के लिए योग करता है, वह योगाभ्यासी है, साधक नहीं। लेकिन जब आदमी अपने जीवन में योग के लक्ष्य को अपना लेता है, तब वह योग साधक कहलाता है।

अपने जीवन को तंदुरुस्त रखने के लिए हम जो थोड़ी बहुत ठोक-पीट करते हैं, वह है अभ्यास। और अपने जीवन की प्रतिभा के विकास के लिए

जो परिश्रम और प्रयास करते हैं, वह है साधना। जब हम साधना करते-करते योग के बिन्दुओं को अपने जीवन में आत्मसात् करने लगते हैं, तब योग एक आचरण, एक जीवनशैली के रूप में सामने आती है। अगर आपको पहाड़ा नहीं मालूम और आपसे पूछा जाता है कि आठ छके कितना होता है, तो उसका जवाब नहीं दे पाओगे। लेकिन अगर पहाड़ा मालूम है तो तत्काल बतला सकते हो। मतलब एक विद्या को हमने ग्रहण किया और उसका उपयोग किया। यौगिक जीवन पद्धति में यही होता है। हमने यौगिक विचारों और विधियों को आत्मसात् किया है और वे हमारे आचरण और व्यवहार में प्रकट हो रही हैं।

इस प्रकार जब योग के सिद्धांत जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं तब फिर हम एक यौगिक संस्कृति को जीने लगते हैं। एक संतुलित, सभ्य, जाग्रत और सकारात्मक मानव के रूप में जब हम एक-दूसरे को सहायता प्रदान करते हैं तो उससे अपना, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का उत्थान होता है। यही योग का क्रम है। अभ्यास या विधि चाहे जो भी रहे, पहले तुम अभ्यासी रहते हो, उसके बाद योग साधक बनते हो, उसके बाद योग को आत्मसात् करके योग तुम्हारी जीवनशैली का अभिन्न अंग हो जाता है और उसके बाद जिन यौगिक संस्कारों को तुमने प्राप्त किया है, जब वे अभिव्यक्त होते हैं तब योग संस्कृति का निर्माण होता है।

आने वाले सत्संगों में हम चर्चा करेंगे कि व्यक्ति अपने जीवन को किस सरल, सुलभ ढंग से योगमय बना सकता है। लोगों के मन में एक भ्रांति है कि योग के लिए हमें समय निकालना पड़ेगा। हाँ, विधियों को सीखने के लिए समय जरूर निकालना पड़ेगा, लेकिन यौगिक जीवन जीने के लिए समय निकालने की आवश्यकता नहीं। वह जीवन का सहज आचरण और व्यवहार हो जाता है। एक संगीतकार अगर दीवार में कील ठोंकने की आवाज सुनेगा या खौलते पानी पर रखे ढक्कन के फड़फड़ाने की आवाज सुनेगा तो उसमें से भी ताल निकाल देगा। कहने का आशय यह कि जो जिस विद्या में प्रवीण होता है, वह उस विद्या का प्रयोग जीवन की हर परिस्थिति में करता है।

जब हम किसी विद्या को आत्मसात् कर लेते हैं, तब वह सहज व्यवहार के रूप में प्रकट होने लगती है। अब हम रोज आप लोगों की तरह दो-तीन घण्टे आसन का अभ्यास थोड़े ही करते हैं। लेकिन जो करते हैं, उसमें

पूर्ण अनुभव होता है, अधूरा नहीं। योग सीखने के लिए बेशक समय चाहिए, लेकिन योग जीने के लिए समय की आवश्यकता नहीं है। वह सहज व्यवहार है। इसलिए योग सीखने में जो समय देना है, जरूर दो, लेकिन उसे जीवन पद्धति के रूप में परिवर्तित करना एक सहज, स्वाभाविक प्रक्रिया होनी चाहिए।



# समन्वित योग साधना

*21 अगस्त 2011*

अपने दैनिक जीवन में हम योग को किस प्रकार आत्मसात् कर सकते हैं, आज हम इस विषय पर चर्चा करेंगे। योग का अभ्यास और अनुभव केवल कक्षा तक सीमित नहीं है। योग को तुम बेशक कक्षा में सीखते हो लेकिन उसके बाद उन सिद्धांतों और विधियों को अपने दैनिक जीवन में सम्मिलित करना चाहिए। योग कक्षा में डेढ-दो घण्टे बिताकर जब लोग यह सुनते हैं कि उन्हें इन विधियों का प्रतिदिन घर पर भी अभ्यास करना होगा, तो सामान्य प्रतिक्रिया घबराहट और झुंझलाहट की होती है। लोग सोचने लगते हैं, 'मैं अपनी व्यस्त दिनचर्या में दो घण्टे का योगाभ्यास कैसे शामिल कर पाऊँगा? इसके लिए मुझे सबेरे बहुत जल्दी उठना पड़ेगा, अपनी दिनचर्या में बहुत-से परिवर्तन लाने होंगे?' वे इस तरह की अनेक अटकलें लगाने लगते हैं और दुविधाग्रस्त हो जाते हैं। कुछ लोग कक्षा में सिखाये गये अभ्यासों को एक-दो घण्टे घर पर करने का प्रयास भी करते हैं, लेकिन कुछ समय बाद उनका उत्साह ढीला पड़ जाता है। दूसरी परिस्थितियाँ और जिम्मेदारियाँ उनकी दिनचर्या पर हावी होने लगती हैं और कुछ हफ्तों या महीनों बाद उनका योगाभ्यास छूट जाता है।

योग का अभ्यास इस तरीके से नहीं होना है। कक्षा में चाहो जितना सीखो और अभ्यास करो, लेकिन घर पर वह सब करने की कोशिश मत करो। बल्कि जो सीखा है, उसका छोटे-छोटे कैप्सूल रूप में दिन में जब भी अनुकूल समय मिले तब अभ्यास कर लो। इस प्रकार से अपने योगाभ्यास में थोड़ा फेर-बदल करके उसे अपनी दिनचर्या के अनुकूल बनाना चाहिए। तुम्हें यह देखना होगा कि कौन-से अभ्यास तुम प्रतिदिन कर सकते हो, कौन-से अभ्यास प्रति सप्ताह,

कौन-से अभ्यास प्रति माह और कौन-से अभ्यास प्रति वर्ष। इस तरह से अपने लिए योग का सालाना कार्यक्रम तैयार कर लो। अगले साल वह कार्यक्रम बदल सकता है और धीरे-धीरे तुम योग मार्ग में प्रगति कर सकते हो।

यह दैनिक कार्यक्रम किस तरह शुरू होना चाहिए? दिन में वे कौन-सी छोटी-छोटी अवधियाँ हैं जिनमें तुम किसी उपयोगी योग विधि का अभ्यास कर उन परिस्थितियों को संभाल सकते हो जो तुम्हारे शरीर, मन, मस्तिष्क और भावनाओं पर हावी हो रही हैं?

## प्रातःकालीन मंत्र साधना

सबेरे जिस क्षण हमारी नींद खुलती है, उसी क्षण से हमारी दिनचर्या आरम्भ हो जाती है, और जिस क्षण हम आँखों को बन्द करके निद्रा में लिप्त हो जाते हैं, उस क्षण हमारी दिनचर्या समाप्त होती है। जब हम सबेरे जागते हैं उस समय हमारा मस्तिष्क शांत रहता है, उसमें चंचलता नहीं होती। जैसे-जैसे दिन बीतता है और हम अपने परिवार, समाज और व्यवसाय से जुड़ने लगते हैं, वैसे-वैसे मन-मस्तिष्क में उत्तेजना आती है।

विज्ञान बतलाता है कि मस्तिष्क के भीतर चार प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं – बीटा, अल्फा, थीटा और डेल्टा। ये चार विद्युतीय तरंगें मस्तिष्क के भीतर उत्पन्न होकर मस्तिष्क के व्यवहारों को नियंत्रित करती हैं। जब बीटा तरंग आती है तब मन-मस्तिष्क चंचल रहता है, उत्तेजित रहता है, संसार से जुड़ा रहता है। जब आप लोगों ने यहाँ प्रवेश किया, उस समय आपके मस्तिष्क में बीटा तरंगों की प्रधानता थी। लेकिन अब आप लोग शांति से बैठकर मेरी बातों को सुन रहे हो, धीरे-धीरे बीटा तरंगों की प्रधानता कम हो रही है और अल्फा तरगों की वृद्धि हो रही है। लेकिन जब यहाँ से बाहर निकलोगे और वाणी की चहचहाहट शुरू होगी, तब पुनः अल्फा तरंगें कम होंगी और बीटा तरंगें प्रधान।

जब आप सोकर उठते हैं, उस समय आपका मन संसार से जुड़ा नहीं होता। अखबार, टेलीविजन, आदि का प्रभाव अभी मन पर नहीं पड़ा है। मस्तिष्क शांत और स्थिर है, उसमें अल्फा तरंगों की प्रधानता है। इस समय मन के भीतर जो विशेष अवस्था होती है, उसे अवचेतन अवस्था कहते हैं। जागने पर हम पूर्णरूप से जगे नहीं होते, अर्द्ध-चेतनता की अवस्था रहती है। जब तक हम अपने मुँह पर पानी के छींटे नहीं देते, दाँत-मुँह नहीं साफ

करते, स्नान नहीं करते और जब तक शरीर की इन्द्रियाँ क्रियाशील नहीं होतीं, तब तक निद्रा से उठने पर अवचेतन अवस्था प्रधान होती है। इस अवचेतन अवस्था में संसार के विषयों की जो पहली मुहर पड़ती है, वह आपके दिन को उसी दिशा में मोड़ देती है।

एक उदाहरण देता हूँ। आदमी उठने के लिए अलार्म लगा देता है। अलार्म की ध्वनि कैसी होती है? टर्रर्रर्र...। अब सोचो, तुम सो रहे हो और अचानक कान के पास बड़ी जोर से घण्टी की टर्रर्रर की आवाज होती है, तो तुम एकदम चौंककर, बौखलाकर उठते हो। तुम्हारा मन उसी समय चंचल और विक्षिप्त हो जाता है। योग कहता है कि जब तुम उठते हो और तुम्हारा अवचेतन मन जाग्रत रहता है, तब उस समय कुछ ऐसे संकल्पों को लो, जो तुम्हारे लिए हितकर होंगे। आजकल विदेशों में भी अवचेतन मन की ऊर्जा और क्षमता के बारे में बहुत-से साहित्य छप रहे हैं, लेकिन हमारी परम्परा में प्राचीन काल से इस तथ्य को जाना और समझा गया है। प्राचीन समय से हम लोग मानते आए हैं कि चेतन मन बाहरी संसार के विषयों, इच्छाओं, अपेक्षाओं, कर्मों, व्यवहारों, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से जुड़ा रहता है, जबकि अचेतन मन विषयों से एकदम कटा रहता है। बीच की स्थिति को अवचेतन कहा गया है, जो चेतन और अचेतन के बीच एक सेतु का काम करता है। अगर हम इसी अवचेतन मन को प्रात:काल अच्छे विचारों से जोड़ दें तो दिनभर अशांति नहीं होगी।

इसलिए सबेरे उठते ही कुछ ऐसे संकल्प लो जो तुम्हारे अवचेतन में प्रवेश करें और तुम्हारे जीवन के लिए हितकर हों। इसके लिए योग में एक तरीका बतलाया गया है और वह तरीका है मंत्र का। मंत्र शक्ति चेतना की चंचलता और तनावों को तो दूर करती ही है, साथ ही इससे अवचेतन मन में संकल्प का बीजारोपण भी होता है। इसलिए जब सबेरे उठते हो, तब पूर्ण जाग्रत होने से पहले, हाथ-मुँह धोने, शौचालय जाने या स्नान करने से पहले बिस्तर में ही पाँच मिनट सीधे बैठ जाओ। आरोग्य का एक संकल्प लो कि मैं पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करूँगा, किसी बीमारी या रोग से लाचार नहीं रहूँगा। इस प्रकार का संकल्प लेकर, शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्यवर्द्धक महामृत्युंजय मंत्र– *ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं, उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्*– का जप ग्यारह बार कर लो। यह जप सहज रूप से होना चाहिए, न चिल्लाकर, न मानसिक रूप से।

उसके बाद मानसिक प्रतिभा के विकास और मानसिक शांति का संकल्प लो, 'आज मैं चंचल, तनावग्रस्त या परेशान नहीं होऊँगा और अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करूँगा।' इस प्रकार का संकल्प लेकर ग्यारह बार गायत्री मंत्र– *ॐ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्*– का जप करो। फिर तीसरा संकल्प लो कि जीवन में कभी मेरी दुर्गति या दुर्दशा न हो, मैं हमेशा प्रसन्न, सुखी और मस्त रहूँ। इस प्रकार का संकल्प लेकर दुर्गा जी के बत्तीस नामों का पाठ तीन बार कर लो –



*ॐ दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी ।दुर्गमच्छेदिनीदुर्गसाधिनीदुर्गनाशिनी॥*
*दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा ।दुर्गमज्ञानदादुर्गदैत्यलोकदवानला॥*
*दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।दुर्गमार्गप्रदादुर्गमविद्यादुर्गमाश्रिता॥*
*दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी ।दुर्गमोहादुर्गमगादुर्गमार्थस्वरूपिणी॥*
*दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी।दुर्गमांगी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी॥*
*दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।*

हम आपको प्रात:काल जिन तीन मंत्रों का अभ्यास करने के लिए कह रहे हैं, वे आपके मन को शक्ति प्रदान करेंगे, जीवन में कवच की भाँति बाहर की परिस्थितियों, तनावों, चिंताओं, तकलीफों से आपकी रक्षा करेंगे, किसी भी तनाव की स्थिति में आपके मन को शांत रखेंगे और हमेशा मानसिक स्पष्टता कायम रखेंगे। इन मंत्रों का जप करने में ज्यादा-से-ज्यादा सात-आठ मिनट का समय लगता है। और यह नहीं सोचना कि मैं तो अभी उठा हूँ, नहाया नहीं हूँ, मुँह नहीं धोया हूँ, मैं मंत्र-जप कैसे करूँगा। अगर जाकर नहा-धो लोगे तो मंत्र प्रभावी नहीं होगा। वह यंत्रवत् अभ्यास हो जाएगा, क्योंकि उस समय मन की स्थिति बदल जाती है। लेकिन अगर तुम

अर्द्धचेतनता की ही स्थिति में बैठकर इन तीन मंत्रों का जप कर लोगे, तो तुम्हें ही उपलब्धि होगी। स्वास्थ्य को प्राप्त करोगे, प्रतिभा को प्राप्त करोगे, जीवन में हमेशा मंगल होगा, दुर्गति और दुर्दशा से मुक्त रहोगे। सबेरे के पहले क्षण से तुम्हारी दिनचर्या में योग का कार्यक्रम शामिल होता है। इन तीन मंत्रों को करने के बाद फिर दाँत साफ कर लो, शौच कर लो, नहा लो और अपनी दैनिक चर्या में संलग्न हो जाओ।

सामान्य रूप से तुम जो कुछ भी सोचते या करते हो, वह चेतन मन के माध्यम से होता है। चेतन मन में बुद्धि का भी उपयोग करते हो और भावना का भी। चेतन मन जाग्रत लेकिन चंचल है। मंत्र का असर चेतन मन पर नहीं, अवचेतन मन पर होता है। अवचेतन मन को हम एक शांत झील की तरह मान सकते हैं, और चेतन मन को चंचल झील की तरह। आधुनिक युग में बहुत लोगों की आदत है कि जब उठते हैं तब बिस्तर पर ही चाय, नाश्ता और अखबार लेते हैं। यह शांत झील में कंकड़-पत्थर फेंकने जैसा हुआ। शांत झील में अगर तुम कंकड़-पत्थर फेंकते जाओगे तो जल चंचल हो जएगा। यह चंचलता तुम्हारे चेतन मन की सतह पर दिखलाई देगी। लेकिन जब मन शांत रहता है, तब वह अवचेतन मन है।

बहुत बार आदमी सोचता है कि हम एक अच्छा संकल्प लेंगे और उस संकल्प के अनुसार चलेंगे। नये वर्ष के दिन भी बहुत-से लोग वर्षभर के लिए नये-नये संकल्प लेते हैं। लेकिन क्या तुम उस संकल्प का पालन कर पाते हो? नहीं। एक-दो दिन, या ज्यादा-से-ज्यादा एक-दो सप्ताह तक करते हो, उसके बाद उस संकल्प को भूल जाते हो। क्यों? विचार तो तुमने ही किया था, संकल्प तो तुमने ही लिया था, फिर भूले क्यों? क्योंकि जब चेतन मन चंचल होता है तब उसमें कोई भी संकल्प प्रभावी नहीं होता।

हमने बच्चों पर प्रयोग किये हैं। एक उदाहरण देता हूँ। बहुत-से बच्चे रात में बिस्तर को गीला कर देते हैं। बहुत-से बच्चों का मन पढ़ाई में नहीं लगता, वे खेलकूद में ही लगे रहते हैं। उन्हें अच्छे नम्बर नहीं मिलते तो क्लास में दिक्कत हो जाती है। हमने ऐसे बच्चों पर एक प्रयोग किया, जो गुरु जी ने हम पर बचपन में किया था। जब रात को बच्चा सोता है तो सोने के पाँच-सात मिनट के बाद उसे थोड़ा-सा हिला कर, ताकि उसकी आँखें अर्द्धनिद्रित अवस्था में खुलने लगें, उस समय चार-पाँच संकल्प बोल दो। बच्चा अर्द्धनिद्रा में सो रहा है। लेकिन उसको हिलाने से उसके शरीर

में थोड़ी बहुत हलचल होगी, उसकी आँखें डबडबायेंगी, उस समय कुछ संकल्प बोलो, जैसे, 'मुझे अगर पेशाब करना है तो मैं उठकर माता-पिता को उठाऊँगा और बाथरूम जाऊँगा।' अगर पढ़ाई में मन नहीं लगता है तो 'मेरा ध्यान पढ़ाई में होगा और मैं अच्छे नम्बर लाऊँगा।' ऐसे चार-पाँच वाक्यों को दस बार बोल दो और एक सप्ताह, एक महीने में इसका परिणाम देखो। बच्चे का कायाकल्प हो जाता है। हमारा हुआ है।

मुंगेर के बुर्जुग जानते हैं कि हम कितने शैतान, कितने बदमाश थे। आश्रम में कोई भी प्रवेश के लिए आता तो पहले हमारा अनुमोदन लेना पड़ता। किसी की धोती चीर देते थे, किसी की लंगोटी कुतर देते थे, किसी के बाल काट देते थे, किसी के मिठाई का डिब्बा खा जाते थे। मतलब हम शैतानियत की मिसाल थे। लेकिन हम पर गुरु जी ने यह प्रयोग किया और इसका यह परिणाम हुआ कि आज हम भोले-भाले हो गये। यह प्रयोग हमने भी आगे कई बच्चों पर किया है। ऐसे बच्चे देश-विदेश में आज प्रतिभा-सम्पन्न हैं।

अवचेतन मन की क्षमता और शक्ति का अहसास मुझे पहली बार तब हुआ जब ग्यारह वर्ष की अवस्था में मुझे इंग्लैण्ड के डॉक्टरों के सामने व्याख्यान देना था। एक ग्यारह साल का बच्चा पेशेवर डॉक्टरों के सामने किस विषय पर बात कर सकता है! व्याख्यान देने से पहले जब मैं रात को सोया, तब मुझे एक स्वप्न आया जिसमें मैं व्याख्यान दे रहा था। जब मैं जगा तो मुझे अपने उस व्याख्यान की हर बात साफ-साफ याद थी। मैंने सभी बिन्दुओं को लिख लिया और फिर डॉक्टरों के समक्ष व्याख्यान दिया। व्याख्यान समाप्त होने पर डॉक्टरों ने मुझसे पूछा, 'तुमने यह सब कहाँ पढ़ा?'

मैंने कहा, 'मैंने किसी स्कूल-कॉलेज में पढ़ाई नहीं की है।'

'फिर किसने तुम्हें ये सब चीजें सिखाईं?'

'किसी ने नहीं।'

'तुम्हें मालूम है तुमने किस विषय पर व्याख्यान दिया है? बायोफीडबैक पर,एक ऐसा नया विषय जिसपर हम लोगों ने हाल ही में अनुसंधान और प्रयोग करना शुरू किया है!'

तब मैंने चिंतन करना शुरू किया, 'यह सारा ज्ञान कहाँ से आया, जिसके आधार पर मैं एक पूर्णतया वैज्ञानिक व्याख्यान दे पाया। कल तक तो मुझे इस विषय के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। फिर स्वप्न में मैंने इस पर व्याख्यान दिया और अब जाग्रत अवस्था में भी मुझे वह ज्ञान प्राप्त हो गया है।' अगली

बार जब मैं श्री स्वामीजी से मिला तो सबसे पहले इसी विषय पर प्रश्न किया। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, 'यह तो एक मामूली-सी चीज है। आगे-आगे देखना तुम्हारे मन के सतह पर क्या-कुछ उभरकर आता है।'

उन्होंने इस विषय पर दुबारा कुछ नहीं कहा, लेकिन बढ़े होने पर मुझे अहसास हुआ कि उन्होंने मेरे अवचेतन मन में अनेक तरह के बीज बो दिये थे। जब मैं बचपन में सोता तो वे भगवद् गीता पर चर्चा करते, वेद, उपनिषद्, पुराण तथा गणित, विज्ञान, इतिहास और साहित्य जैसे विषयों पर किताबें पढ़कर सुनाते। अगले दिन वे मुझे वह किताब पढ़ने को देते, और जब मैं किताब खोलकर वह पन्ना पढ़ता तो मुझे लगता, 'मैंने यह कहीं पढ़ा है। मुझे यह विषय मालूम है।' लेकिन मैंने वह विषय कब और कहाँ पढ़ा था, इसकी मुझे कोई स्मृति नहीं रहती। इस विधि से मेरे लिए अनेक विषयों को तत्काल सीखना-समझना सम्भव हुआ। मानो वे विषय मेरी चतना में जीवन्त हो उठते थे। यह योग निद्रा का ही परिणाम था।



योग निद्रा अवचेतन मन को प्रभावित करती है। योग निद्रा का अभ्यास करते हुए तुम्हें कई बार अनुभव होगा कि तुम न सोये हो, न जगे हो। तुम्हें लगेगा कि तुम पूरे अभ्यास के दौरान जगे रहे हो लेकिन तुम्हें शिक्षक के निर्देशों की कोई स्मृति नहीं होगी। इसका मतलब वे सभी निर्देश सीधे तुम्हारे अवचेतन मन में प्रवेश कर गए हैं। अगर वे तुम्हारे चेतन मन से गुजरे होते तो तुम्हें याद रहता कि शिक्षक ने क्या-क्या कहा था। तुम्हें न तो निर्देशों की स्मृति रहती है, और न ही सोने की। तुम उस समय अवचेतन अवस्था में होते हो।

यह दृष्टान्त इसलिए दे रहा हूँ ताकि तुम्हें अवचेतन मन की शक्ति का अहसास हो। अगर अवचेतन मन में सही विचार, सही संकल्प पड़े तो वह समय आने पर अवश्य फलीभूत होता है। सामान्यतया हम चिन्ता और तनाव से पीड़ित रहते हैं; घर, समाज और व्यवसाय के वातावरण से परेशान रहते हैं। लेकिन अर्द्धनिद्रा की स्थिति में अगर हम संकल्प लें कि हमें स्वास्थ्य और प्रतिभा की प्राप्ति हो और जीवन की दुर्गति और दुर्दशा से हमें मुक्ति मिल जाए, तब हमारी मानसिकता, हमारा आचरण अवश्य परिवर्तित होता है। मनुष्य का निराशावादी चिन्तन आशावादी चिन्तन में बदल जाता है। मनुष्य का नकारात्मक, संकीर्ण व्यवहार सकारात्मक और व्यापक हो जाता है। इसलिए इस मनोविज्ञान को समझकर प्रात:काल उठते ही इन तीन मंत्रों का जप करना चाहिए।

अपने जीवन में संकल्प शक्ति को जाग्रत करने के लिए अवचेतन मन को जगाना है। इसके लिए एक संकल्प के साथ मंत्र का प्रयोग करना है। हर मनुष्य के लिए ये तीन मंत्र प्रभावी हैं, क्योंकि तीन ही मूल आवश्यकताएँ हैं – स्वास्थ्य तथा प्रतिभा की प्राप्ति और दुर्गति से मुक्ति। तीन मंत्रों की यह साधना सबेरे का पहला कार्यक्रम है, और यह मंत्र-साधना करने में किसी को झिझक नहीं होनी चहिए, चाहे वह किसी भी धर्म-सम्प्रदाय से क्यों न जुड़ा हो, क्योंकि इन मंत्रों का प्रयोजन तुम्हारा व्यक्तिगत उत्थान है। ये मंत्र तुम्हारे व्यक्तित्व के विकास में सहयोग देंगे।

## नाश्ते से पहले आसन और प्राणायाम का अभ्यास

मंत्र-साधना के पश्चात् आता है आसनों का अभ्यास। नहा-धोकर तैयार होकर, नाश्ते के लिए जाने से पहले पन्द्रह मिनट आसनों का अभ्यास कर लो। यह बात हम एक सामान्य व्यक्ति के लिए बतला रहे हैं, एक बीमार आदमी के लिए नहीं। बीमार आदमी किसी योग कक्षा में जाकर अपनी बीमारी के लिए अगर



योग सीखेगा और उसके अनुसार अभ्यास करेगा तो बीमारी से मुक्त हो सकता है। लेकिन यहाँ पर हम योग को एक साधना के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं जो हमारी दिनचर्या से जुड़ी है।

आसनों के अभ्यास में कौन-से आसन शामिल होने चाहिए? योगाभ्यासियों को इस बिन्दु पर प्राय: दुविधा रहती है। वे प्रारम्भिक से लेकर उच्च अभ्यासों को सीख तो लेते हैं लेकिन उन्हें समझ नहीं आता कि नियमित रूप से किसका अभ्यास करें। कुछ आसनों को वे थोड़े दिनों के लिए करते हैं, फिर सोचते हैं कि अब कुछ और आजमाना चाहिए। उनके अभ्यास में किसी प्रकार की निरंतरता नहीं रहती। निरंतरता के अभाव में अभ्यास का प्रभाव केवल शारीरिक स्तर पर होता है। बस पेशियों में थोड़ा लचीलापन आ जाता है और जोड़ों का कड़ापन थोड़ा कम होता है।

यौगिक दृष्टिकोण से दैनिक अभ्यास के लिए पाँच आसन ही पर्याप्त हैं। तुम्हारा शरीर सामान्य रूप से किस प्रकार हिल सकता है, मुड़ सकता है? शरीर को तानना एक गतिविधि है। आगे और पीछे झुकना एक अन्य गतिविधि है। बगल की ओर झुकना एक और गतिविधि है और शरीर को मोड़ना एक और। अपने शरीर से तुम यही मुख्य गतिविधियाँ करते हो। जब तुम रात को सोते हो तो शारीरिक गतिविधि के अभाव में जोड़ों में विभिन्न अम्लीय पदार्थ एकत्र हो जाते हैं जिनसे जोड़ों में कड़ापन होता है। शरीर को इस कड़ेपन से मुक्त करना चाहिए और इसके लिए शरीर की सामान्य गतिविधियों की समझ होनी चाहिए।

*ताड़ासन*– आसनों का अभ्यास ताड़ासन से शुरू करो। इससे पूरा शरीर तनेगा। हर जोड़ और पेशी में तान उत्पन्न होगा। मेरुदण्ड, कूल्हों, घुटनों, टखनों और पैरों के जोड़ों में जो दबाव और संकुचन होता है, वह समाप्त हो जाता है। कशेरुकाएँ फिर से फैल जाती हैं। पीठ और कन्धों से कड़ापन दूर होता है। शरीर में पैरों से लेकर हाथों की अंगुलियों तक माँसपेशियों का पूरा

विस्तार हो जाता है। फेफड़े खुल जाते हैं, हम ठीक से श्वास ले पाते हैं। धमनियाँ और शिराएँ खुलती हैं और रक्त-संचार में सुधार होता है। अभ्यास करते समय कल्पना करो कि तुम अपनी हथेलियों से छत को छूने जा रहे हो, और हर बार शरीर को एक सेंटीमीटर और तानने का प्रयास करो। ताड़ासन का यह अभ्यास श्वास के साथ जोड़कर इस तरह दस बार करो।

याद रखो कि अगर तुम योग के केवल शारीरिक लाभ पाना चाहते हो तो योगाभ्यासों को गत्यात्मक ढंग से करो। गत्यात्मक अभ्यासों द्वारा तुम अपने पेशीय-तंत्र, तंत्रिका-तंत्र और अस्थि-तंत्र की संरचना को प्रभावित करते हो। लेकिन अगर तुम योग के सूक्ष्म परिणामों का अनुभव करना चाहते हो, प्राणिक स्तर पर लाभ चाहते हो तो अभ्यास को धीरे-धीरे, सजगता और श्वास के साथ जोड़कर करो। शरीर की हर गतिविधि का अवलोकन और अनुभव होना चाहिए, कोई भी गतिविधि यंत्रवत् नहीं होनी चाहिए।

*तिर्यक् ताड़ासन*– दूसरा आसन तिर्यक् ताड़ासन है, जिसमें सीधे खड़े होकर, पैरों को फैलाकर अपने शरीर को बाँयी और दाँयी ओर मोड़ते हैं। ऐसा करने से शरीर के एक ओर संकुचन होगा और दूसरी ओर प्रसारण। इस संकुचन-प्रसारण से हमारी आँतें, पेट, गुर्दे, जिगर आदि जितने भी आन्तरिक अंग हैं, उन पर जोर पड़ता है। वहाँ पर स्पंज जैसा प्रभाव अनुभव करोगे। जैसे स्पंज को दबाने से उससे सारा पानी निकल आता है और छोड़ने पर वह फिर पानी सोख लेता है, वैसे ही भीतर में जो स्थाई खून रहता है, वह इस अभ्यास द्वारा वहाँ से हटेगा और नया खून अन्दर जायेगा, जिससे सभी आन्तरिक अंग ठीक तरीके से अपना कार्य करने लगेंगे।



इस अभ्यास को दोनों ओर दस-दस बार करो, और हर बार थोड़ा ओर झुकने का प्रयास करो, एक सेंटीमीटर ओर झुकने की कोशिश करो। जब तुम अपने शरीर की सीमा तक पहुँच जाओगे तब उस स्थिति में थोड़ी देर रहने का प्रयास करो।



*कटिचक्रासन*– तीसरा अभ्यास कटिचक्रासन का है, जिसमें खड़े होकर अपने शरीर को मोड़ते हैं। गीले कपड़े से पानी को कैसे निकाला जाता है? निचोड़कर न? उसी प्रकार जब हम शरीर को भी पहले एक तरफ, फिर दूसरी तरफ निचोड़ते हैं, तब ऐसा करने से हमारे मेरुदण्ड में जो कड़ापन रहता है और हमारे बैठने का सही तरीका नहीं होने के कारण मेरुदण्ड की आकृति जो विकृत हो जाती है, वह इससे दूर हो जाती है। कंधों का दर्द खत्म हो जाता है, कमर लचीली बनती है, और माँसपेशियों से स्थाई खून हटकर वहाँ नया खून जाता है।

याद रखो, जैसे भवनों का वजन उनके स्तम्भ ढोते हैं, वैसे ही मेरुदण्ड शरीर का आधारस्तम्भ है। वजन ठीक से ढोने के लिए स्तम्भों का सीधा होना जरूरी है। अगर कोई स्तम्भ टेढ़ा हुआ तो भवन ज्यादा दिन नहीं टिकेगा। लोगों प्राय: ठीक से नहीं बैठते, वे काम करते समय आगे की ओर झुके रहते हैं। इससे शरीर के आधारस्तम्भ में विकृति आ जाती है।

कटिचक्रासन से मेरुदण्ड की स्वाभाविक आकृति पुन: लौट आती है। ऐसा होने पर मेरुदण्ड से गुजरने वाली सभी तंत्रिकाएँ सुचारु रूप से कार्य करने लगती हैं। मस्तिष्क, तंत्रिका-तंत्र और शरीर के विभिन्न अंगों में पूर्ण सामंजस्य रहता है।

इस अभ्यास को करते समय तुम अपने पैरों की दूरी को कम-ज्यादा करके मेरुदण्ड पर अलग तरह के प्रभाव डाल सकते हो। अगर पैरों का फासला

ज्यादा रखोगे तो असर मेरुदण्ड के निचले भाग और कटि क्षेत्र में महसूस होगा। अगर पैरों को पास रखोगे तो पूरा मेरुदण्ड प्रभावित होगा। जब बहुत देर तक बैठे रहने के कारण कूल्हों में कड़ापन अनुभव हो तो पैरों को फैलाकर इस आसन का अभ्यास कर लो। ऐसी स्थिति में प्रभाव मुख्य रूप से कूल्हों पर पड़ेगा। जब लगे कि बहुत देर तक काम करने से कन्धों में कड़ापन है तो पैरों को पास रखकर यह अभ्यास करो। इसका प्रभाव पूरे मेरुदण्ड पर पड़ेगा।

तुम्हारे शरीर की यही मुख्य गतियाँ हैं। पहली है तानना, दूसरी है दायें-बायें झुकना, तीसरी है मुड़ना, और चौथी तथा पाँचवीं हैं आगे-पीछे झुकना, जिनका अभ्यास सूर्य नमस्कार के द्वारा किया जाता है।

*सूर्य नमस्कार*– इस अभ्यास में क्रमबद्ध ढंग से शरीर को आगे और पीछे झुकाया जाता है जिससे चक्रों और उनसे सम्बन्धित नर्वस प्लेक्ससों पर असर पड़ता है। उदाहरण के लिए, इस अभ्यास की दूसरी स्थिति, हस्त उत्थानासन में जब भुजाओं को सिर के ऊपर उठाकर पीछे की ओर झुकते हैं, तो गर्दन पर खिंचाव पड़ता है। इसका सीधा प्रभाव विशुद्धि चक्र पर पड़ता है। जब तुम आगे झुकते हो तो मणिपुर चक्र प्रभावित होता है। इस प्रकार इस अभ्यास की हर भंगिमा, हर गति विभिन्न चक्रों में प्राणशक्ति के संचार को प्रभावित करती है।

चौथी और नौवीं स्थिति में शरीर के एक ओर संकुचन होता है और दूसरी ओर विस्तार। इससे इड़ा और पिंगला नाड़ियों पर असर पड़ता है। जब इड़ा और पिंगला नाड़ियों में संतुलन एवं सामंजस्य रहता है तब शरीर तथा मन में स्फूर्ति का अनुभव होता है। सूर्य नमस्कार के अभ्यास से बहुत ऊर्जा प्राप्त होती है क्योंकि यह प्राण शक्ति को उद्दीप्त करता है।

जब मैं छोटा था तब आश्रम में संन्यासियों के बीच स्पर्धा हुआ करती थी कि कौन सूर्य नमस्कार के ज्यादा राउण्ड कर सकता है। हम लोगों का लक्ष्य एक सौ आठ राउण्ड करना रहता था। कई महीनों तक हमने ऐसा किया भी। उस दौरान यही हमारा एकमात्र योगाभ्यास हुआ करता था। अभ्यास से जो ऊर्जा मिलती थी उससे हम दिनभर की दौड़-भाग और काम-काज आसानी से कर लिया करते थे। हमें किसी विशेष पौष्टिक आहार की जरूरत नहीं पड़ती थी। पौष्टिक आहार तो दूर, आश्रम के प्रारम्भिक दिनों में पैसे की इतनी तंगी थी कि कई बार दो-तीन दिन तक खाने को कुछ भी नसीब नहीं होता था। उन दिनों मैं एक बड़ा-सा बोरा लेकर मुंगेर के बाज़ार जाता और



रास्ते पर फेंके हुए पत्तों को उठाता। उन पत्तों को बोरे में भरकर आश्रम ले आता, जहाँ हम उन्हें साफ करते, सड़े-गले हिस्सों को निकाल देते और बचे हुए भाग को पकाते। दस लीटर पानी में शायद पालक के तीन पत्ते होते। यही हमारा भोजन था। अगर हमें नमक मिल जाता, तो मानो दावत हो गई।

हमारा प्रारंभिक जीवन निश्चित रूप से बहुत कठिन था। आप में से कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि हम किन परिस्थितियों से गुज़रे हैं। अगर मैं वैसी जीवनशैली आज यहाँ शुरू करूँ तो सब-के-सब संन्यासी आश्रम छोड़कर चले जाएँगे। पर उस कठिन दौर में आसनों ने ही हमें ऊर्जान्वित रखा। मत पूछो कैसे, लेकिन प्राण शक्ति का स्तर बढ़ाकर हम लम्बे समय तक अपने आपको चला सके।



इन चार आसनों से शरीर की पाँचों मुख्य गतिविधियाँ सम्पन्न हो जाती हैं। इसके बाद सामान्य, स्वस्थ लोगों के लिए आसन शृंखला में अंतिम अभ्यास है सर्वांगासन का।

*सर्वांगासन*– गुरुत्वाकर्षण के कारण हम लोगों का जो खून पैरों की तरफ जाता रहता है, पैरों में भार बना रहता है और पैर थकते रहते हैं, उसे हम इस अभ्यास के माध्यम से कुछ क्षणों के लिए उल्टा कर देते हैं। अगर पाँच मिनट के लिए भी करोगे तो मस्तिष्क में रक्त-संचार बढ़ जाएगा। वास्तव में खून तो मस्तिष्क को चाहिए, पैरों को नहीं।



दिनभर हम लोगों का खून नीचे ही ज्यादा जाता है और मस्तिष्क में कम। जब शरीर को उल्टा करोगे तब खून मस्तिष्क में जायेगा और वहाँ तीव्रता आएगी।

प्रारम्भिक अभ्यासियों को अंतिम स्थिति में ग्यारह की गिनती तक रहना चाहिए, उससे अधिक नहीं। अभ्यास के साथ धीरे-धीरे इस अवधि को बढ़ाया जा सकता है। जिन लोगों को उच्च रक्तचाप, हृदय रोग या स्पॉण्डिलाइटिस जैसी बीमारियाँ हों, उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

दैनिक योगाभ्यास के लिए ये पाँच आसन पर्याप्त हैं। इनके अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। मैं आपको गारन्टी के साथ कह रहा हूँ। चक्रासन, शीर्षासन, मयूरासन या किसी और आसन की आवश्यकता नहीं है। हर व्यक्ति के लिए मात्र ये पाँच अभ्यास उपयोगी हैं, क्योंकि इनके माध्यम से शरीर अपनी सभी सम्भव गतियों से गुजरता है। ताड़ासन से शरीर का विस्तार, तिर्यक् ताड़ासन से शरीर का दायें-बायें झुकना, कटि चक्रासन से शरीर का मुड़ना-निचोड़ना और सूर्य नमस्कार से आगे और पीछे झुकना – इन अभ्यासों से आदमी ऊर्जा-स्फूर्ति प्राप्त करता है, प्राण शक्ति जाग्रत होती है। अन्त में सर्वांगासन गुरुत्वाकर्षण को उलटने के लिए। इन पाँच आसनों के अतिरिक्त एक स्वस्थ व्यक्ति को किसी छठे अभ्यास की आवश्यकता नहीं है। अन्य अभ्यासों का उपयोग शरीर की एक विकृत अवस्था को ठीक करने या किसी रोग का उपचार करने में हो सकता है, लेकिन ये जो पाँच सामान्य आसन हैं, सभी व्यक्तियों के लिए सम्भव हैं, चाहे वह बूढ़ा हो, जवान हो, पुरुष हो, महिला हो, लड़का हो या लड़की हो।

यह बात हमेशा याद रखना कि योग मात्र थेरेपी नहीं है, भले ही हम लोग अपनी नासमझी में योग को केवल एक इलाज पद्धति मान लेते हैं। योग तो स्वास्थ्यवर्द्धक और सुरक्षात्मक है। यह स्वास्थ्य की वृद्धि और रोगों की रोकथाम करता है। इससे शरीर, प्राण और मन में स्फूर्ति एवं हल्केपन का अनुभव होता है।

आसनों के बाद प्राणायामों का अभ्यास आता है, जिनमें सामान्य व्यक्ति के लिए दो महत्त्वपूर्ण हैं।

*नाड़ीशोधन प्राणायाम* – एक नासिका से श्वास लेना और दूसरी नासिका से छोड़ना, फिर दूसरी नासिका से श्वास लेना और पहली से छोड़ना, जिसे आजकल आप लोग टी.वी. में देखकर अनुलोम-विलोम कहने लगे हो, लेकिन वास्तव में इसका नाम नाड़ीशोधन प्राणायाम है। इससे स्नायु संस्थान की चंचलता, उत्तेजना और विकृति दूर हो जाती है। स्नायविक असंतुलन को दूर करने के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास कम-से-कम दस बार होना चाहिए, जिसे करने में तीन-चार मिनट का समय लगेगा।

जब इस प्राणायाम को करते हो, तब केवल यंत्रवत् श्वास लेने और छोड़ने की बजाय, अपनी श्वास की लम्बाई को नियंत्रित करने का प्रयास करो। अगर क्षमता है तो पाँच सेकेण्ड के लिए श्वास अन्दर खींचो, पाँच सेकेण्ड के लिए श्वास बाहर छोड़ो। अगर बिना किसी तनाव के ज्यादा कर सकते हो तो अवश्य करो। योगी तो कहते हैं कि नाड़ी शोधन प्राणायाम तब सिद्ध होता है जब तुम तीस सेकेण्ड तक श्वास लेते हो और उतनी देर तक श्वास छोड़ते हो।

मैं श्वास की अवधि के लिए सेकेण्ड शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ लेकिन योगी गायत्री का प्रयोग करते हैं। गायत्री मंत्र में चौबीस मात्राएँ होती हैं। चौबीस मात्राओं का मतलब चौबीस सेकेण्ड। एक गायत्री मंत्र का जप करते हुए श्वास लेना, एक गायत्री तक श्वास छोड़ना। चौबीस सेकेण्ड का पूरक होता है, चौबीस सेकेण्ड का रेचक।

नाड़ीशोधन प्राणायाम से नाड़ियों की शुद्धि होती है, नाड़ियों में प्राणों का संचार सुचारू रूप से होने लगता है। इससे मानसिक चिंता और उद्विग्नता का शमन होता है, स्नायविक विकार और असंतुलन स्वत: दूर होने लगते हैं। जब कभी मन अशांत हो या मस्तिष्क में थकान का अनुभव हो तब इस प्राणायाम का लघु अभ्यास कर लिया करो।

मैंने नाड़ीशोधन प्राणायाम पर वैज्ञानिक अनुसंधान भी किये हैं। सन् 1977 में ऑस्ट्रेलिया में मैंने किर्लियन फोटोग्राफी का प्रयोग करते हुए एक अनुसंधान किया। कुछ स्वामियों और अन्य व्यक्तियों के हाथों की सबेरे तस्वीर ली जाती, जिससे उनके प्राणिक प्रभामण्डल की जानकारी मिलती। फिर सभी लोग अपने काम-काज पर चले जाते। शाम को वे आते और एक

बार फिर उनके हाथों की तस्वीर ली जाती। दिनभर के काम-काज से हुए प्राणशक्ति के ह्रास को तस्वीर में साफ देखा जा सकता था। फिर वे थोड़ी देर प्राणायाम का अभ्यास करते। हमने पाया कि पाँच मिनट तक इस प्राणायाम का अभ्यास करने से खोई हुई प्राणशक्ति की भरपाई हो जाती थी।

*भ्रामरी प्राणायाम*– दूसरा प्राणायाम भ्रामरी है। अपनी तर्जनी अंगुलियों से दोनों कानों को बन्द कर लो, आँखों को बन्द कर लो। गहरी श्वास अन्दर लेकर श्वास छोड़ते हुए कण्ठ से गुंजन की आवाज करना और इसी आवाज पर अपना ध्यान केन्द्रित रखना। इसका अभ्यास सात से दस बार करना।

हम लोगों ने अनुसंधान में पाया है कि भ्रामरी प्राणायाम मस्तिष्क के तनाव को दूर करता है। जब हम कण्ठ में ध्वनि पैदा करते हैं, तब मस्तिष्क के अन्दर एक रसायन, मेलाटॉनिन का उत्पादन होने लगता है। वैज्ञानिक मानते हैं कि सामान्य रूप से मस्तिष्क में मेलाटॉनिन रसायन का स्राव रात को दो से चार बजे के बीच में ही होता है, अन्य समय नहीं। लेकिन सब वैज्ञानिकों को आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि दिन के किसी भी समय भ्रामरी प्राणायाम करने से मस्तिष्क में मेलाटॉनिन का उत्पादन होने लगा जिससे तुरन्त शारीरिक विश्रांति तथा मानसिक तनावमुक्ति हो जाती है, उच्च रक्तचाप कम हो जाता है। जिन लोगों को उच्च रक्तचाप है, अगर वे बीस-तीस बार भ्रामरी प्राणायाम करेंगे, तो दिनभर के लिए उनका रक्तचाप नियंत्रित रहेगा। उसके लिए फिर दवाई खाने की आवश्यता नहीं। रोज सबेरे तीस बार भ्रामरी प्राणायाम कर लिया करो, और रात को सोने के पहले भी। तुम देखोगे कि एक सप्ताह के भीतर ही उच्च रक्तचाप गायब।



पाँच आसन और दो प्राणायाम, इतना करने में कुल बीस मिनट का समय लगता है और निश्चित रूप से अपने

स्वास्थ्य के लिए आप रोज इतना समय तो खर्च कर ही सकते हो। ऐसा नहीं कि आप रोज एक घण्टा योगाभ्यास कीजिए। सिर्फ पाँच-दस मिनट कीजिए, फिर छोड़ दीजिए। फिर जब उचित समय आता है तब कुछ और कर लीजिए, फिर छोड़ दीजिए।

जब हम योग सिखाया करते थे, तब हम लोगों से कहते थे कि अगर आपको घर में बिल्कुल समय नहीं मिल पाता, तो ये पाँच आसन कर लो और प्राणायाम अपने ऑफिस में जाकर कर लो। कहाँ? ऑफिस के टॉयलेट में। वहाँ कोई नहीं देखेगा। या ऑफिस का दरवाजा बन्द कर दो। कोई नहीं कहेगा कि इनका सिर फिर गया है। ये दो प्राणायम करके फिर अपने टेबल-कुर्सी पर बैठकर काम-काज और लेन-देन शुरू कर देना।

## अपराह्न में योगनिद्रा

जब दोपहर या शाम को अपने काम-काज से घर लौटते हो, तब अपनी बीवी से चाय लाने को मत कहो। कमरे में जाओ, दस मिनट के लिए बिस्तर पर लेट जाओ और संक्षिप्त योगनिद्रा का अभ्यास कर लो। योगनिद्रा के अभ्यास से आप परिचित होंगे। सामान्य रूप से उसे आधा घण्टा करते हैं, लेकिन यहाँ पाँच-दस मिनट से ज्यादा देर अभ्यास की जरूरत नहीं। इसे एक तरह से दीर्घ शवासन समझ सकते हो।

जब शवासन करते हो तब अपने पेट के क्षेत्र में अपनी श्वास के प्रति सजग हो जाओ। जब श्वास लेते हो तब पेट ऊपर उठता है, जब श्वास छोड़ते हो तब पेट नीचे जाता है। अपनी श्वास को उल्टी गिनती करते हुए सौ से एक तक गिनो। सौ श्वास लेने में दस मिनट का समय लगता है और यह दस मिनट का शिथिलीकरण हो जाता है।

श्वास का ख्याल करने से मन और मस्तिष्क, दोनों शान्त हो जाते हैं। जब मन विचलित रहता है, तब देखोगे कि श्वास भी विचलित है। जब मन उत्तेजित है तब पाओगे कि श्वास में भी उत्तेजना है। योगीजन शुरू से मानते आए हैं कि श्वास की गति मन की अवस्था का प्रतीक है। अगर मन चंचल है तो श्वास भी चंचल, और अगर मन शान्त है तो श्वास भी धीमी और लम्बी होती है। मन को ठीक करने के लिए योगियों ने श्वास को आधार बनाया। अगर तुम अपनी श्वास को नियंत्रित कर पाओगे तो अपने मन को भी शान्त कर सकोगे। इसलिए दिनभर के तनाव, चिन्ता और परेशानी से प्रभावित मन

को शान्त करने के लिए श्वास की सौ से एक तक उल्टी गिनती लम्बे शवासन के समय किया करो।

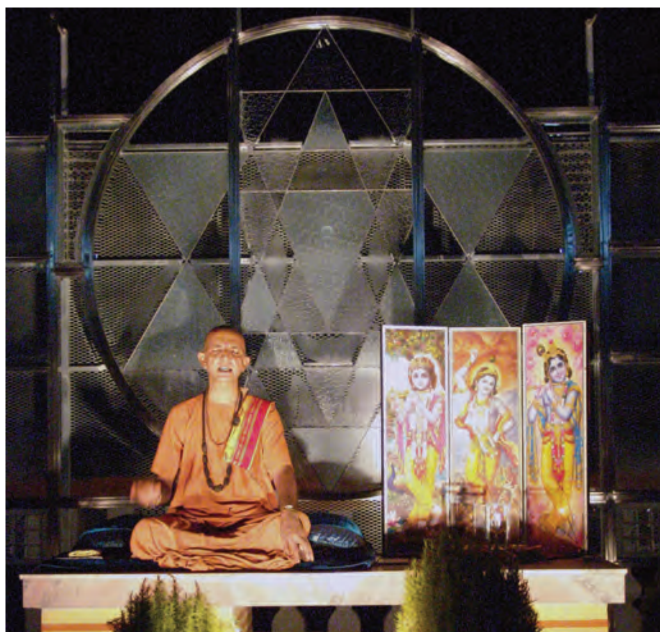
शिथिलीकरण के लिए एक और विधि है चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाना। योगनिद्रा का पूरा अभ्यास करने के बजाय शवासन में लेट जाओ, आँखों को बंद कर लो और अपनी चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाते हुए, उन्हें शिथिल करते जाओ। पूरे शरीर में चेतना घुमा लेने के बाद अभ्यास को समाप्त कर दो और फिर उसके बाद शाम का जो भी कार्यक्रम है, चाय पीना, घूमना-फिरना, बच्चों के साथ समय बिताना या मित्रों से मिलना, वह कर लो।

इतिहास बतलाता है कि फ्रांस का बादशाह, नेपोलियन अपने घोड़े के ऊपर बैठे-बैठे दस मिनट सोता था और उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जाता था। दस मिनट में क्या करता था? बैठकर योगनिद्रा का अभ्यास करता था। गाँधीजी दिनभर काम करते थे और जब परिस्थितिवश उन्हें रात को जागना होता था तो वे बीच में दस मिनट के लिए अपने कमरे चले जाते थे, योगनिद्रा का अभ्यास कर लेते थे, फिर वापस आ जाते थे। दक्षिण अमेरिका में एक देश है कोलम्बिया। वहाँ के भूतपूर्व राष्ट्रपति योगाभ्यासी थे। वे दिनभर और रातभर काम करने में सक्षम थे। उनके सहायक और सहयोगी आश्चर्य करते थे कि यह आदमी हमेशा तरो-ताजा दिखता है और हम लोग थक रहे हैं। उनसे पूछा गया कि आप में इतनी स्फूर्ति और शक्ति कहाँ से आती है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मैं जब थकता हूँ तब योगनिद्रा का अभ्यास कर लेता हूँ, उसके बाद फिर से काम करने लगता हूँ। मैं यह समझाने के लिए ये उदाहरण दे रहा हूँ कि जब शरीर और मन थक जाता है, जब बुद्धि में थकान के कारण कुछ सूझता नहीं है, तब दस मिनट के लिए लम्बा शवासन या योगनिद्रा कर लेने से शरीर और मन को पुन: तरो-ताज़ा किया जा सकता है।

## सोने से पहले ध्यान का अभ्यास

उसके बाद रात को सोने से पहले दस मिनट बैठकर ध्यान का अभ्यास कर लो। ध्यान में दो चीजों का ख्याल रहे।

*अंतर्मौन*– ध्यान के पहले पाँच मिनट में अपने विचारों के प्रति सजग हो जाओ ताकि यह देख सको कि मन में किस प्रकार के विचार, किस प्रकार की उत्तेजना, किस प्रकार की चंचलता है। अगर मन में बहुत-से विचार आ रहे हैं,



दफ्तर और घर की चिन्ता है, तो उस समय विचारों का द्रष्टा बनने का प्रयास करो। यह अन्तर्मौन का अभ्यास है। जो विचार तीव्र, चंचल गति से मन में आ रहे हों, उनके साक्षी बनो। देखते रहो, रोकने का प्रयास मत करो। बहुत-से विचार आयेंगे, 'आज मेरा इस आदमी के साथ झंझट हो गया, आज मेरी तरक्की हो गई, आज मैं बेटे के स्कूल की फीस नहीं जमा कर पाया, बेटी की शादी के लिए जो रिश्ता खोज रहा था उसने मना कर दिया।' मन में सौ प्रकार के विचार आयेंगे, लेकिन उनमें अपने आपको लिप्त नहीं करना, बल्कि उनका द्रष्टा बनना। जब तुम किसी विचार को देख लेते हो, उसकी पहचान कर लेते हो, तब उस विचार का तुम्हारे मन पर प्रभाव नहीं होता। विचारों का प्रभाव मन पर तब होता है, जब तुम विचारों को नहीं जानते। इसलिए जो भी विचार आए, अच्छा हो या बुरा, सुन्दर हो या खोटा, सभी को देखते जाओ, किसी को रोकने का प्रयास मत करो।

हम लोग सामान्य रूप से विचारों में लिप्त हो जाते हैं, खो जाते हैं। लेकिन इस समय उन्हें केवल देखना है, अपने आपको भूलना नहीं है। हर विचार की पहचान करनी है। तुम आये हो, ठीक है, देख लिया, अब आगे बढ़ो। किसी

एक विचार को मन में टिकने मत दो। विचार आता है, उसे देखो और फिर कहो कि अब जाओ, जगह खाली करो, दूसरा विचार आ रहा है। ऐसा पाँच मिनट तक करो।

*अजपाजप*– फिर पाँच मिनट शान्तिपूर्वक बैठकर अपनी श्वास को देखो। श्वास का ख्याल करते हुए अनुभव करो कि श्वास नाभि से भ्रूमध्य तक ऊपर चढ़ रही है। श्वास छोड़ते समय अनुभव करो कि श्वास भ्रूमध्य से नाभि तक नीचे आ रही है। उस समय 'सोऽहम्' मंत्र को भी श्वसन क्रिया के साथ जोड़ दो। जब श्वास अन्दर लेते हो तब मानसिक रूप से 'सो' मंत्र का उच्चारण करो, जब छोड़ते हो तब 'हम्' मंत्र का। इस प्रकार पाँच मिनट तक सोऽहम् का यह क्रम चलते रहेगा। कबीरदास जी ने इस अभ्यास को एक अद्वितीय साधना बतलाते हुए कहा है –

*ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहम् सोऽहम् सुरता गाई ।*
*छः सौ सहस इक्कीसौ जाप, अनहद उपजै आपै आप ।*

चौबीस घण्टे में तुम इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेते और छोड़ते हो। जब 'सोऽहम्' की चेतना तुम्हारी हर श्वास में बनी रहेगी तब फिर मन के दूसरे आयाम प्रकट होने लगते हैं, दूसरे दरवाजे खुलने लगते हैं। खैर उतना तो नहीं करना है, पाँच मिनट ही करना है अभी हमको। लेकिन पूर्ण सजगता और एकाग्रता के साथ।

इस ध्यान के अभ्यास के पश्चात् फिर सो जाना। जो तनाव और चिंताएँ अवचेतन में प्रवेश कर जाती हैं, उनको हम ध्यान के द्वारा मन से बाहर निकाल देते हैं और आराम की नींद सो सकते हैं, ताकि अगली सुबह हम ऊर्जायुक्त हो सकें। रात को ध्यान इसलिए जरूरी है। नहीं तो अचेतन तनाव रात को निद्रा में भी मनुष्य को विश्राम नहीं लेने देते। बहुत बार जब हम सबेरे उठते हैं तो थकान का अनुभव करते हैं। सोने के बावजूद भी थकान नहीं मिटती, शरीर में आलस्य बना रहता है, ऊर्जा एवं प्राणों की कमी महसूस होती है। लेकिन अगर आदमी सोने से पहले दस मिनट के लिए ध्यान करे तो सबेरे उसका मन और मस्तिष्क, दोनों तनावमुक्त, स्पष्ट और रचनात्मक होते हैं। इसलिए ध्यान के द्वारा अपने मन में झाड़ू लगा दिया करो। दिनभर की जो चिंताएँ, परेशानियाँ और तनाव मन में बैठ गये हैं, वे रात को निकल जाएँगे, साफ हो जाएँगे, और तुम निश्चिन्त होकर सो पाओगे।

## सोमवार से शनिवार की दिनचर्या संक्षेप में

सबेरे उठते ही तीन मंत्रों का जप, नाश्ते से पहले पन्द्रह-बीस मिनट के लिए पांच आसनों और दो प्राणायामों का अभ्यास, शाम को घर लौटकर दस मिनट का शवासन या योगनिद्रा का अभ्यास और रात को सोने से पहले दस मिनट का ध्यान – यह ऐसी दिनचर्या है, जिसका पालन हर व्यक्ति प्रतिदिन अवश्य कर सकता है। भले ही हम दिन में योगाभ्यास के लिए एक घण्टे की अखण्डित अवधि न निकाल सकें, लेकिन उस एक घण्टे को दस-बीस मिनट की छोटी-छोटी अवधियों में, छोटे-छोटे कैप्सूलों में विभाजित कर उन्हें अवश्य अपनी दिनचर्या का अभिन्न अंग बना सकते हैं। इस अनुशासन का पालन हर व्यक्ति को करना चाहिए, निश्चित रूप से फायदा होगा। यह प्रतिदिन का नियम होना चाहिए और यह नियम सोमवार से शनिवार तक छः दिन का होता है।

## रविवार के दिन षट्कर्म

रविवार को छुट्टी, पर इस दिन षट्कर्मों के दो अभ्यास – कुंजल और नेति कर लो। अगर सक्षम हो तो पहले कुंजल का अभ्यास कर लो। पानी पीकर उसे बाहर वमन कर देना। कुंजल करने से क्या होगा? पाचन तंत्र में पित्त, कफ और वायु के रूप में जो विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें अपने शरीर में संतुलित रख पाओगे। पित्त, वायु और कफ के विकार शरीर के लिए हानिकारक होते हैं। समय-समय पर चाहिए कि हम अपने पेट को साफ रखें ताकि इन विकारों की वृद्धि न हो।

कुंजल के पश्चात् नेति का अभ्यास कर लो। लोटे से एक नासिका में पानी डालकर दूसरी नासिका से बाहर निकालना। नेति से नासिकाएँ साफ हो जाती हैं, साइनस साफ हो जाता है। भ्रूमध्य में बहुत-सी सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं, जिनका सम्बन्ध आँखों, कानों, नाक और मस्तिष्क से रहता है। जल प्रवाह के कारण इन नाड़ियों में संवेदना की उत्पत्ति होती है। यह संवेदना आँखों को प्रभावित करती है। जो लोग निकट दृष्टि-दोष से पीड़ित हैं, वे अगर नेति करेंगे तो उन्हें फायदा होगा। धूल-गर्मी से जो परेशानी होती है, आँखें लाल हो जाती हैं, इस तरह की समस्याओं में भी लाभ होगा। लोगों को कानों की भी समस्या होती है। बहुत बार कान बंद हो जाते हैं, बहुत बार लोगों का सुनना कम हो जाता है। नाक की समस्या होती है, सर्दी में हमेशा बंद रहता



है, आदमी ठीक से बोल नहीं पाता है, नाक से श्वास नहीं ले पाता है, मुँह से श्वास लेता है। कई लोगों को माइग्रेन और सरदर्द की समस्या होती है। इस तरह की जितनी भी समस्याएँ हैं, उन्हें तुम नेति से दूर कर सकते हो। नेति के बाद मस्तिष्क में हल्केपन का अनुभव करोगे। इसलिए सप्ताह में एक दिन षट्कर्म का अभ्यास अवश्य करो। अगर कुंजल और नेति करने की आदत पड़ गई है तो इसके लिए दस मिनट से ज्यादा नहीं लगेंगे।

यह हुई रविवार की हठयोग चर्या। यह सब तो अभ्यास के रूप में करना चाहिए। साथ-ही कुछ चीजें ऐसी हैं जो तुम्हारे चरित्र और स्वभाव की फाइन-ट्यूनिंग के लिए हैं, उनमें संतुलन और सामंजस्य लाने के लिए हैं। इन्हें भी अपनी दिनचर्या में शामिल करने का प्रयास करो।

## दैनिक गतिविधियों का पुनरावलोकन

रात को सोने से पहले अपने पूरे दिन का पुनरावलोकन कर लो। सबेरे जगने से लेकर रात को बिस्तर पर लेटने के क्षण तक तुमने क्या-क्या किया? दिनभर तुम्हारा लोगों के साथ कैसा व्यवहार रहा, विभिन्न परिस्थितियों के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही? किन परिस्थितियों में तुम्हें क्रोध आया? कब दुविधा में पड़े और कब विषाद में? इस तरह अपने दिन की मुख्य घटनाओं को याद करते जाओ। जहाँ कहीं समस्या दिखाई दे, उस पर चिंतन करो, 'अगर मुझे दुबारा ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े तो उसे संभालने का बेहतर तरीका क्या है?' इसे करने में पाँच मिनट से ज्यादा समय नहीं लगेगा। कालान्तर में तुम पाओगे कि तुम अपनी प्रतिक्रियाओं को बेहतर ढंग से नियंत्रित कर पा रहे हो। दैनिक घटनाओं का यह अवलोकन और विश्लेषण ध्यान के बाद करना चाहिए, जब तुम अपने बिस्तर पर लेटकर सोने की तैयारी कर रहे हो, ताकि मन को दिनभर के प्रभावों से रिक्त कर सको।

## 'स्वान' सिद्धांत–स्वयं को जानने की विधि

सप्ताह में एक बार समय निकालकर किसी एकांत स्थान में चार कागज लेकर बैठ जाओ। पहले कागज पर अपने सामर्थ्यों, अपने गुणों को लिखो। दूसरे कागज पर अपनी कमजोरियों को लिखो। तीसरे कागज पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, अभिलाषाओं और अपेक्षाओं को लिखो। चौथे कागज पर अपनी आवश्यकताओं को लिखो। ये तुम्हारे जीवन की वास्तविक आवश्यकताएँ होनी चाहिए, कामनाएँ नहीं। इस सूची को कालान्तर में बढ़ाते जाओ। यह काम एक दिन में पूरा नहीं होगा। मुझे अपनी सूची बनाने में कई महीने लगे। एक सप्ताह मैं कोई एक चीज जोड़ता, फिर अगले सप्ताह जब विश्लेषण करता तो सोचता, 'नहीं, यह सही नहीं है। मुझे यह चीज यहाँ से हटाकर दूसरी सूची में डालनी चाहिए। यहाँ कुछ और आना चाहिए।' इस प्रकार तुम भी अपने सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं

और आवश्यकताओं का विश्लेषण करो। इसमें समय जरूर लगेगा। हो सकता है एक महीना लगे, हो सकता है दो-तीन महीने लगें। लेकिन धीरे-धीरे तुम अपने स्वभाव और चरित्र के बारे में बहुत कुछ जानने लगोगे। तुम अपने सामर्थ्यों के प्रति सजग बनोगे और जीवन की ऐसी परिस्थितियों में, जहाँ तुम्हारी कमजोरियाँ उजागर होती हैं, वहाँ तुम उन कमजोरियों के प्रतिपक्ष सामर्थ्यों का प्रयोग कर उन परिस्थितियों का बेहतर ढंग से सामना कर पाओगे।

यह ज्ञानयोग का व्यावहारिक अभ्यास है। ज्ञानयोग मात्र यह प्रश्न करना नहीं है कि मैं कौन हूँ, बल्कि अपनी त्रुटियों को पहचानकर उन्हें सुधारने का प्रयास है, अपने सामर्थ्यों को पहचानकर उन्हें विकसित करने का प्रयत्न है। जब तुम इस प्रकार की सूची बना लेते हो तो एक सप्ताह के लिए किसी एक सामर्थ्य और किसी एक कमजोरी को चुन लो। सप्ताहभर सजग रहो कि वह कमजोरी तुम्हें कब प्रभावित करती है और कब तुम अपने उस सामर्थ्य का उपयोग कर पाते हो। इस तरह का साप्ताहिक अभ्यास करने से तुम पाओगे कि सालभर में तुम्हारे चरित्र में अनेक सकारात्मक परिवर्तन आ गए हैं।

## साप्ताहिक मंत्र साधना

सप्ताह में एक दिन मंत्र साधना के लिए भी समय निकालो। *मननात् त्रायते इति मंत्रः* – मंत्र में वह शक्ति है, जो मन को स्व-निर्मित बंधनों से मुक्त करती है। मंत्र में हर व्यक्ति के जीवन की कामना को पूर्ण करने की क्षमता भी है। शर्त्त केवल एक ही है – उसका अभ्यास श्रद्धा-विश्वास के साथ करो। चाहे शनिवार हो, चाहे रविवार, जिस दिन भी समय मिल जाए एक माला मंत्र का जप अवश्य करना चाहिए। भले ही रोज न हो पाए। बहुत-से लोग मंत्र लेते हैं। कई लोग रोज जप कर पाते हैं, और बहुत कहते हैं कि मैंने मंत्र तो लिया है, लेकिन मैं अभ्यास नहीं कर पाता हूँ। मैं थक जाता हूँ या समय नहीं रहता है। लेकिन सप्ताह में एक दिन उस मंत्र का एक माला जप निश्चित रूप से करो। उच्चारण करते हुए, मानसिक रूप से नहीं।

हमारे गुरुजी ने यह परम्परा भी चलाई है कि योगाभ्यासियों के घरों में हर शनिवार को महामृत्युंजय मंत्र का जप होना चाहिए। शनि महाराज से तो सब घबराते हैं। जिसके सिर पर शनि महाराज एक बार चढ़ जायें, फिर वहीं पर साढ़े सात साल तक आसन जमा लेते हैं। तब आदमी को बहुत संघर्ष करने पड़ते हैं, क्योंकि वे किसी को चैन से बैठने नहीं देते। आदमी को हमेशा दौड़ाते-भगाते



रहते हैं। गुरुजी ने कहा कि शनि महाराज को अनुकूल रखने के लिए ऐसे व्यक्ति की आराधना करनी चाहिए जिससे शनि महाराज घबराते हों। शनि महाराज किससे घबराते हैं? शंकर भगवान से, क्योंकि उन्हें मालूम है कि भगवान शंकर के सामने जो भी उत्पाती आते हैं, उन्हें वे भस्म कर देते हैं। कामदेव ने उत्पात किया, उन्हें भस्म कर दिया। इसलिए शनिवार को महामृत्युंजय मंत्र का जप करो ताकि शनि महाराज भी हमारे साथ ही रहें और हमारे जीवन में ज्यादा उत्पात न हों। देवकृपा हमें प्राप्त होती रहे, यह व्यवस्था गुरुजी कर गए हैं।

मुंगेर में बहुत-से लोगों ने इस पद्धति को अपनाया है। अपने घरों में हर शनिवार को पूरे परिवार को साथ लेकर महामृत्युंजय मंत्र का जप करते हैं। वह जप एक भावनात्मक संगठन उत्पन्न करता है। उस संगठन के कारण पारिवारिक अशांति दूर हो जाती है। परिवार के सदस्य एक-दूसरे को समझने लगते हैं, आपस में मिलना हो जाता है। नहीं तो आजकल कौन मिलता है? केवल टी.वी. देखने या कभी-कभी भोजन के लिए मिलते हैं। लेकिन जब अपने व्यक्तिगत उत्थान के लिए एक पारिवारिक प्रयास होता है, तब मन-मस्तिष्क पर उसका ज्यादा प्रभाव होता है। अगर आप अकेले अभ्यास करेंगे तो मन में हमेशा असंतोष रहेगा कि हम अकेले कर रहे हैं। लेकिन अगर

पूरा परिवार पन्द्रह-बीस मिनट के लिए साथ बैठ जाता है और सब मिलकर सस्वर एक माला जप कर लेते हैं, तब उसमें सभी को संतोष होता है, सभी का सहयोग मिलता है, सबकी भावना एक दिशा में प्रवाहित होती है। इससे पारिवारिक संगठन की वृद्धि होती है और परिवार में शांति आती है।

## पाक्षिक चर्या

दिनचर्या से साप्ताहिक चर्या तक धीरे-धीरे योग को अपने जीवन में आत्मसात् करते जाओ। फिर आती है पाक्षिक चर्या। हर पन्द्रह दिन में अपने लिए एक-एक यम और नियम का अभ्यास निश्चित कर लो। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य – ये पाँच यम हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान – ये पाँच नियम हैं। किसी एक यम को पकड़ लो। उदाहरण के लिए अहिंसा को ही लो। पन्द्रह दिन तक देखो कि मन में किस प्रकार के विचार आते हैं। किसी के प्रति खोटे विचार, दूषित विचार, नकारात्मक विचार आते हैं तो रोक दो। अपने मन को हिंसा की वृत्ति से पन्द्रह दिन मुक्त रखने का प्रयास करो। हो सकता है दस प्रतिशत, पाँच प्रतिशत या एक प्रतिशत ही सफलता मिले। कोई बात नहीं। पन्द्रह दिन के बाद उसे छोड़ दो और दूसरे यम को पकड़ लो। फिर उसको छोड़ दो और तीसरे यम को पकड़ लो। इसी प्रकार से नियमों के साथ भी करो।

इस प्रकार जीवन में यम और नियम का अभ्यास सहजता से हो जाएगा। यम-नियम के अभ्यास से मनुष्य का व्यवहार परिवर्तित होता है। व्यवहार ही नहीं, मानसिकता, मनोदशा, मनोवृत्ति सब बदल जाते हैं। आप खुद अनुभव करोगे कि जीवन में संतोष, शांति, प्रतिभा और स्पष्टता आ रही है।

यदि रसगुल्ले का स्वाद जानना चाहते हो तो किसी के कहने पर मत चलो कि यह मीठा है। एक बार खुद खाकर देखो। उसी प्रकार अगर जीवन में यम-नियम का प्रभाव जानना चाहते हो तो उनके बार में पढ़ो मत। एक बार आजमाकर देखो। सभी लोग आसन-प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए तत्पर होते हैं, लेकिन यम-नियम का अभ्यास कौन करता है? अगर सच्चे योग साधक हो तो आजमाकर देखो, क्योंकि अंत में फायदा तो आपको ही होने वाला है। आप और भी अच्छे आदमी बनेंगे, अच्छे संस्कारों से जुड़ेंगे, जीवन में अच्छे गुण आएँगे, व्यवहार और आचरण संयमित एवं अनुशासित होगा। यही यम और नियम का वास्तविक प्रयोजन भी है।

# यौगिक जीवनशैली

*22 अगस्त 2011*

इस सत्संग शृंखला में हम लोगों का विषय दैनिक जीवन में योग साधना रहा है – एक सामान्य व्यक्ति की दिनचर्या में किस प्रकार हम यौगिक अभ्यासों और चिंतनों को जोड़ सकते हैं। लोगों का योग से सम्पर्क प्राय: तभी जुड़ता है जब उनके जीवन में कोई समस्या, बीमारी, दुविधा या तनाव रहता है। अगर तुम योग को इन समस्याओं को संभालने के लिए ही उपयोग में लाते हो तो तुम केवल योगाभ्यासी हो। जैसे ही तुम्हारी समस्या का निबटारा हो जाता है, तुम्हारा योगाभ्यास भी छूट जाता है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो योग के किसी अंग को गहराई में अनुभव करना चाहते हैं और उस योगांग के निर्दिष्ट लक्ष्य को पाना चाहते हैं। ऐसे लोग योग साधक कहलाते हैं। वे योग के सिद्धान्तों और विधियों को अपने जीवन में आत्मसात् करना चाहते हैं, अपने व्यक्तित्व की प्रसुप्त प्रतिभाओं को जाग्रत करना चाहते हैं, तथा चेतना एवं शक्ति की विभिन्न अवस्थाओं पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हैं।

कुछ व्यक्ति अपनी कुण्डलिनी जाग्रत करना चाहते हैं और इसके लिए वे क्रियायोग या कुण्डलिनीयोग की साधना अपनाकर उसका दीर्घकाल तक अभ्यास करते हैं। कुछ लोग हठयोग में रुचि रखते हैं, और अनेक वर्षों तक उसका अभ्यास करते हैं। कुछ अन्य साधक राजयोग में पारंगत होना चाहते हैं और इस उद्देश्य से वे लम्बे समय तक इसकी विधियों का अभ्यास करते हैं। इस प्रकार अपनी रुचि और आकांक्षा के अनुसार साधक किसी योग मार्ग का चयन करते हैं और अपनी प्रतिभा की वृद्धि के लिए उसका दीर्घकाल तक

अभ्यास करते हैं। यही योग साधना है। जैसे-जैसे तुम योग साधना में संलग्न होते जाते हो, वैसे-वैसे योग तुम्हारे दैनिक जीवन का अंग बनता जाता है।

## योग के लिए समय निकालना

सामान्यत: योगाभ्यासियों की यह मान्यता रहती है कि उन्हें योगाभ्यास के लिए अपनी दिनचर्या में से एक-डेढ घण्टे का समय अलग से निकालना होगा। लेकिन प्रतिदिन इतना समय निकाल पाना न तो किसी के लिए सम्भव है, न व्यावहारिक ही। संन्यासी भी जब ऐसा नहीं कर पाते तब सांसारिक जीवन की आपा-धापी में लगे गृहस्थ अपने ढेर सारे दायित्वों और जिम्मेदारियों के बीच डेढ-दो घण्टे का समय कैसे निकाल पायेंगे?

हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि योग का लक्ष्य मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास है। एकांगी विकास उचित नहीं है। हमारी अभिव्यक्ति बुद्धि, भावना और कर्म के स्तरों पर होती है। हमें अपनी इन्हीं तीन क्षमताओं के विकास का प्रयास करना चाहिए। तभी हमारा व्यक्तित्व पूरी तरह निखर सकेगा। जो योग हमारी बुद्धि, भावना और कर्म को विकसित करने में सहायता करे, वही समन्वित योग है। इस प्रकार स्वामी शिवानन्द जी समन्वित और चयनित योगाभ्यासों पर बल दिया करते थे।

## दैनिक योग साधना का निर्धारण

हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी कहते थे कि अगर तुम सब्जी पकाते समय दो किलो पालक को दो लीटर पानी में उबालो और उसमें दो किलो नमक और दो ही किलो मसाले डाल दो तो उसका स्वाद कैसा होगा? एकदम बेकार न! लेकिन अगर तुम दो किलो पालक को दो लीटर पानी में उबालो और उसमें दो चुटकी नमक, एक चुटकी मसाला डालो तो सब्जी का बढ़िया स्वाद होगा। योगाभ्यास को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। अगर एक घण्टे तक आसन, एक घण्टे तक प्राणायाम, एक घण्टे तक ध्यान, एक घण्टे तक यह अभ्यास, एक घण्टे तक वह अभ्यास करोगे तो इसे ज्यादा दिन तक कायम नहीं रख पाओगे। लेकिन अगर सब्जी बनाने के दृष्टान्त को ध्यान में रखते हुए कुछ अभ्यासों को कम, कुछ को ज्यादा करोगे तो इसका बहुत लाभकारी परिणाम देखने में आएगा। बीस मिनट आसन, दस मिनट प्राणायाम, पन्द्रह मिनट योग निद्रा, पाँच मिनट मंत्र साधना और दस मिनट ध्यान – यह बहुत

अच्छा सम्मिश्रण है। श्री स्वामीजी के निर्देशों पर आधारित इस प्रकार का दैनिक कार्यक्रम तुम अपने लिए तैयार कर सकते हो।

## आहार एवं निद्रा की सुव्यवस्था

एक और जरूरी बात, अपने आहार और निद्रा पर हमेशा ध्यान देना है। हमारे पूर्वज कहा करते थे कि स्वस्थ शरीर की पहली पहचान है, 'लकड़ हजम पत्थर हजम।' हमारे शरीर में इतनी ऊर्जा होनी चाहिए कि हम जो भी ग्रहण करें, उसे पचा लें। स्वास्थ्य की दूसरी पहचान है कि जैसे ही तुम बिस्तर पर अपना सिर रखो, तुरंत नींद आनी चाहिए। यह नहीं कि बिस्तर पर लेटे हुए करवट बदलते जा रहे हैं, नींद नहीं आ रही है और चिंता सता रही है। हमारे पूर्वजों ने स्वास्थ्य की ये दो पहचानें दी हैं। पाचन और निद्रा का ठीक होना। इसके लिए आपको उचित व्यवस्था करनी होगी।

पाचन को ठीक रखने के लिए क्या करना चाहिए? समय पर खाना, बेसमय नहीं। हमने अपने गुरुजी की जीवनशैली करीब से देखी है। जितने वर्षों तक उनके साथ रहे, उनके भोजन का समय निश्चित देखा। अगर निश्चित समय बीत गया तो फिर वे भोजन नहीं करते थे। जब वे गंगा दर्शन में रहते थे तब हम लोग उनके साथ प्रसाद ग्रहण किया करते थे। हमें कई बार दिक्कत हो जाती थी। हमें बुलाते थे कि दफ्तर बंद करो और खाने के लिए आओ। दफ्तर में कभी कोई अफसर, कोई कमिश्नर, कोई भक्त, कोई साधक या कोई रोगी बैठा होता तो उनसे कैसे कहते कि हम जा रहे हैं, आप लोग भी यहाँ से जाइये। बहुत दिक्कत होती थी। लेकिन हमने अपने गुरुजी के जीवन में गजब की समय की पाबंदी देखी। दस बजे मतलब दस बजे, दस बजकर दस मिनट नहीं। पांच बजे मतलब पांच बजे, पांच बजकर दस मिनट नहीं। अंतिम क्षण तक उनका यह नियम रहा। वे कहते थे कि अगर आज मैं स्वस्थ हूँ तो उसका यही कारण है कि मैं समय का पाबंद रहा हूँ।

अगर भोजन समय-बेसमय होगा, तो फिर आंतरिक अंगों पर नाहक जोर पड़ेगा। एक उदाहरण देता हूँ। अगर हम लोग टॉयलेट के फ्लश को दिनभर खींचते रहेंगे और पानी निकलता रहेगा तो बहुत जल्दी फ्लश खराब हो जाएगा। लेकिन अगर हम अपनी आवश्यकतानुसार दिन में तीन-चार बार ही फ्लश खींचेंगे, चालीस बार नहीं, तो बहुत लंबे समय तक वह फ्लश हमारा साथ देगा, बिगड़ेगा नहीं। वैसे ही पेट के साथ होता है। पेट यंत्रवत् कार्य




करता है। आप भोजन खाते हो तो भोजन को पचाने के लिए एक निश्चित मात्रा में पाचक द्रव्य निकलते हैं। चाहे आप एक मूँगफली खाओ, या थालीभर भोजन, पाचन के रसायन यह नहीं देखते कि पेट में कितना भोजन गया है। भोजन को पचाने के लिए हमेशा एक ही मात्रा में निकलते हैं।

आजकल लोगों को दिनभर कुछ-न-कुछ खाने की आदत हो गई है। दिन में सात-आठ बार चाय हो जाती है, कहीं जाते हैं तो एक-दो बिस्कुट खा लेते हैं, कहीं एक मुट्ठी चूड़ा खा लेते हैं, कहीं एक कोल्ड-ड्रिंक पी लेते हैं। उससे पेट पर दबाव पड़ता है। पेट में पाचक द्रव्यों का पूरा इस्तेमाल नहीं होता। वे पेट में जमने लगते हैं, जिसके कारण पित्त, कफ, गैस वगैरह की शिकायत हो जाती है।

आश्रम में जब नए लोग आते हैं, तो उन्हें शुरू-शुरू में परेशानी होती है, क्योंकि यहाँ पर भोजन का निश्चित समय है और दिन में फाँकने के लिए कुछ मिलता नहीं है। बहुत-से लोग अपने साथ खाने-पीने का ढेर-सारा सामान लेकर आते हैं। आधे बैग में कपड़े, आधे में खाने का सामान रहता है। मुझे याद है बचपन में एक बार आश्रम में एक महिला आई थी। वह अपने साथ बड़ा-सा बिस्कुट का डिब्बा लेकर आई थी। हमारी उम्र करीब आठ साल की रही होगी। उस डिब्बे पर हमारी नजर पड़ गई। जब वह महिला क्लास में गई थी तब उसका डिब्बा खाली कर दिया। बेचारी एक महीने के लिए पूरी व्यवस्था के साथ

बिस्कुट का टिन लेकर आई थी और वह पहले दिन ही खाली हो गया! उसने बहुत हल्ला किया, 'मेरे बिस्कुट कौन खा गया!' स्वामीजी को तो मालूम था कि आश्रम में कौन गड़बड़ करता है, पर चुप रहे। महिला भी समझ गई होगी, लेकिन कुछ बोल नहीं पाई। उसे भी आश्रम के अनुशासन में रहना पड़ा। जब आई थी तो भयंकर मोटी थी, जब गई तब एकदम पतली हो गई थी!

हम लोग एक नियम बना लें कि हमारे नाश्ते का यह निश्चित समय है, दिन के भोजन का यह समय है, रात के भोजन का यह समय है। रात का भोजन दस बजे क्यों न हो, किन्तु समय पर हो। यह नहीं कि आज हम पाँच बजे, तो कल सात बजे, तो परसों नौ बजे ले रहे हैं। जब इच्छा हो, तब खाने की हम लोगों की जो आदत है, वह नहीं होनी चाहिए। अगर स्वास्थ्य की कामना करते हो तो भोजन पर अनुशासन और नियंत्रण आवश्यक है। अगर जल्दी मरना चाहते हो तो खूब खाओ, बेसमय खाओ। कॉलेस्ट्रॉल बढ़ेगा, हृदय की धमनियाँ बन्द हो जायेंगी, हृदयाघात होगा, कभी भी जा सकते हो। यह एक ऐसा विषय है जिसपर हर व्यक्ति को ध्यान देना चाहिए। भोजन का समय निश्चित करना चाहिए और भोजन में पाबंदी होनी चाहिए।

एक और बात। आयुर्वेद कहता है कि ऋतु के अनुसार आहार को अगर आदमी ग्रहण करे तो वह हमेशा स्वस्थ रहेगा। लेकिन आजकल ठण्ढे मौसम की सब्जी कोल्ड-स्टोरेज में रखकर गर्मी में खिलाई जाती है। वह तो ऋतु का आहार नहीं है। भले ही उसका स्वाद अच्छा लगे, लेकिन शरीर पर उसका विपरीत असर पड़ेगा। आयुर्वेद का यह सिद्धांत है कि जो ऋतु-अनुसार आहार करेगा, वह स्वास्थ्य को प्राप्त करेगा।

दूसरी बात, निद्रा पर ध्यान देना है। जब बिस्तर में जाते हो तब दुनिया को साथ लेकर मत सोओ। दुनिया को बिस्तर से बाहर करके कहो कि तुम्हारे बारे में छः घण्टे बाद उठकर फिर सोचूँगा। जब बिस्तर पर लेटते हो तब इस धारणा के साथ लेटो कि मैं तनावमुक्त होकर, चिंतामुक्त होकर सो रहा हूँ और सबेरे ऊर्जायुक्त होकर उठूँगा। चिंतामुक्त और ऊर्जायुक्त। अगर नींद नहीं आती है तो लेटे-लेटे श्वास पर ख्याल करो। सौ से उल्टी गिनती करो। हो सकता है कि अस्सी तक पहुँचते-पहुँचते नींद आ जाए।

आहार और निद्रा, इन दोनों पर हर व्यक्ति को अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुसार ध्यान देना चाहिए। अगर इन्हीं दोनों को हम लोग नियमित कर सकें तो बहुत-सी बीमारियों और तकलीफों से हम स्वतः मुक्त हो सकते हैं।




## वार्षिक चर्या

एक नियम बना लो कि साल में एक बार सप्ताह-दस दिन के लिए किसी आश्रम या किसी तीर्थस्थान में जाना है। इससे वातावरण परिवर्तन होगा। हमारे ऋषि-मनीषी कहते थे कि तुम किसी ऐसी जगह जाओ जहाँ पर कुछ समय के लिए दूसरे वातावरण में रह सको। वह वातावरण तुम्हारे उत्थान का कारण बनना चाहिए। विदेशी लोग छुट्टियों में सैर करने, मौज उड़ाने जाते हैं, लेकिन भारतीय परम्परा में जब लोग घर से बाहर जाते थे तो तीर्थों या आश्रमों में जाते थे, क्योंकि वहाँ के भिन्न वातावरण में रहकर, भिन्न चिंतन में रहकर उनके दिमाग में बदलाव होता था, उनकी बैट्री रीचार्ज होती थी।

यह एक नियम हो जाना चाहिए। साल में एक बार कुछ दिनों के लिए किसी तीर्थ चले गये, वहाँ रहे, घूमे, थोड़ा चिंतन किया, थोड़ा अनुष्ठान किया, योग-जप किया, थोड़ा आराम किया, फिर वापिस आ गए। या किसी आश्रम में चले गये। भारत में तो अनेकों आश्रम हैं। अपनी सुविधानुसार किसी भी आश्रम में चले गए, वहाँ सत्संग में, स्वाध्याय में, साधना में, चिंतन में, सेवा में कुछ समय बिताया। फिर वापस आ गए। इससे बैट्री चार्ज होती है।



हमारे गुरुजी हमसे कहा करते थे कि निरंजन, मस्तिष्क और मन वास्तव में एक बैट्री है, टार्च लाईट की बैट्री की तरह। तुम टार्च लाईट का जितना उपयोग करोगे उतनी अधिक बैट्री खर्च होगी। वही हाल मन की बैट्री का भी है। जब मन की ऊर्जा समाप्त हो जाती है तब यह निष्क्रिय हो जाता है। इसकी रचनात्मकता और सकारात्मकता खत्म हो जाती है। जब यही स्थिति लम्बे समय तक कायम रहती है तब फिर मानसिक अवसाद का सामना करना पड़ता है। जीवन अंधकारपूर्ण, संघर्षपूर्ण, दु:खपूर्ण और नीरस दिखलाई देता है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि समय-समय पर किसी आश्रम या किसी तीर्थ में रहकर अपनी बैट्री को फिर से एक साल के लिए चार्ज कर ले, और एक नयी प्रेरणा, नये चिंतन, नये विश्वास को लेकर अपने सांसारिक कार्य में संलग्न हो जाए।

## आध्यात्मिक डायरी

एक चीज और। एक आध्यात्मिक डायरी रखा करो। आध्यात्मिक डायरी का मतलब, मुझे जीवन में जो आंतरिक अनुभव हुआ, उसे मैं लिखते जाऊँ। मैंने

जिस कमी को पार किया, जो सामर्थ्य प्राप्त किया, उसका मैं वर्णन कर लूँ। अपने आंतरिक, मानसिक, आध्यात्मिक अनुभवों की वह डायरी हो जाती है। जब आप सालभर बाद पहले, दूसरे या तीसरे पन्ने को देखोगे तो पाओगे कि साल के अंत तक कितना परिवर्तन हो गया है। स्वामी शिवानन्द जी हमेशा जोर देते थे कि हर साधक को आध्यात्मिक डायरी रखनी चाहिए। उससे वह अपनी प्रकृति को पहचान सकता है, अपनी कमियों को पहचान सकता है और उसने जो प्राप्त किया है उसे जान सकता है।

यह एक साल का कार्यक्रम है। दैनिक कार्यक्रम में मंत्र, आसन, प्राणायाम, योगनिद्रा और ध्यान। साप्ताहिक कार्यक्रम में षट्कर्म, मंत्र साधना और स्वान साधना। पाक्षिक या मासिक कार्यक्रम में एक यम और एक नियम को पकड़ लेना। और वार्षिक कार्यक्रम है किसी तीर्थ या आश्रम में जाकर कुछ समय बिताना। चाहे आस्था रहे या न रहे, कोई बात नहीं, देखने के लिए ही जाओ, कौतूहलवश चले जाओ, लेकिन जाओ जरूर, क्योंकि वहाँ का वातावरण आपके मानसिक वातावरण को परिवर्तित करेगा। यह दैनिक जीवन में योग साधना की संक्षिप्त और व्यावहारिक प्रक्रिया है, जिसे हमने आपके सामने रखा है। इसमें आप हठयोग भी कर रहे हो, राजयोग भी कर रहे हो, कर्मयोग भी कर रहे हो, ज्ञानयोग भी कर रहे हो और भक्तियोग भी कर रहे हो। सभी योगों का सहज समावेश हो रहा है।

## सजगता का विकास

अंतिम चीज, अपनी प्रतिक्रियाओं के प्रति हमेशा सजग बनने का प्रयास करो। एक बार मन में विचार जरूर आना चाहिए कि मेरी जो प्रतिक्रिया हो रही है क्या इसे मैं और अच्छा बना सकता हूँ या नहीं। किसी ने हमें डाँट दिया, तुरंत क्रोध आया, हमने कुछ बक दिया, प्रतिक्रिया हुई। एक बार महात्मा बुद्ध के पास एक व्यक्ति क्रोध में पहुँचा और उनके सामने खड़े होकर सौ जबरदस्त गालियाँ दीं। महात्मा बुद्ध शांतिपूर्वक सब कुछ सुनते रहे। एक घण्टा डाँट सुनाने के बाद जब व्यक्ति शांत हुआ, तब महात्मा बुद्ध कहते हैं, 'मेरे एक प्रश्न का जवाब दो।' आदमी कहता है, 'कौन-सा प्रश्न?' महात्मा बुद्ध कहते हैं, 'अगर तुम कोई उपहार लेकर दूसरे आदमी के पास जाओ, उसे उपहार दो और वह आदमी उसे स्वीकार नहीं करे तो उस उपहार का क्या करोगे?' आदमी ने कहा कि मैं उपहार को अपने साथ वापस ले जाऊँगा। महात्मा बुद्ध

बोले, 'ठीक है, तुमने भी जो एक घण्टे तक उपहार दिया है, उसे मैं स्वीकार नहीं करूँगा। इसे तुम वापस ले जा सकते हो।'

अगर आप महात्मा बुद्ध की जगह होते तो अपनी धोती बांधते और उस आदमी से कुश्ती करने लगते। वह आपकी प्रतिक्रिया होती। महात्मा बुद्ध की प्रतिक्रिया थी कि आपने मुझे जो दान में दिया है वह मुझे नहीं चाहिए, कृपया वापिस लेते जाइए। आदमी उसके सामने क्या बोलेगा? इसलिए कर्मों में, व्यवहार में धैर्य और सहनशीलता होनी चाहिए। अगर व्यवहार में धैर्य और सहनशीलता आ जाए तो संयम और अनुशासन भी आ जायेगा। तब समझ लो कि तुम कर्मयोगी बन गए हो।

झाड़ू लगाने से ही कोई कर्मयोगी नहीं होता। सेवा करने से ही कोई कर्मयोगी नहीं बनता। धैर्य और सहनशीलता से आदमी कर्मयोगी बनता है। व्यावहारिक बुद्धि के कारण आदमी ज्ञानयोगी बनता है। भावनाओं को विकृत न होने देने से व्यक्ति भक्तियोगी कहलाता है। जब मनुष्य अपने मन के प्रति सजग रहता है तब यह योग साधना कहलाती है।

इस सजगता का विकास छोटे-छोटे कदमों से होना है। अपने जीवन की एक घटना सुनाने से यह बात आपकी समझ में आ जाएगी। बचपन में आश्रम में रहते हुए मुझे एक ही समस्या थी। मुझे बहुत गहरी नींद आती थी और मैं रोज सबेरे देर से उठता था। यहाँ तक कि कई बार तो मेरे गुरु-भाई मेरी चौकी उठाकर आश्रम के बाहर रख देते थे और जब मैं उठता तो अपने आपको आश्रम के बाहर पाता! अपनी इस आदत की वजह से मैं श्री स्वामीजी की सबेरे की कक्षाओं में भी नहीं जा पाता। चाहकर भी मैं इस आदत को नहीं छोड़ पा रहा था।

अंत में मैंने श्री स्वामीजी से पूछा, 'मैं इस आदत से पिण्ड छुड़ाने के लिए अपने मन को कैसे प्रशिक्षित करूँ?' उन्होंने कहा, 'थोड़ा-थोड़ा करके।' मैं उस समय नौ साल का बच्चा था, लेकिन मैंने उनके इस छोटे-से निर्देश पर गहराई से सोचना शुरू किया। 'अगर मैं आजकल रोज सात बजे जगता हूँ तो कल से मैं एक सप्ताह के लिए पाँच मिनट पहले जगूँगा। फिर अगले सप्ताह दस मिनट पहले, फिर तीसरे सप्ताह पौने सात बजे।' इस तरह के नियम का पालन करते हुए कुछ महीनों बाद मैं बिना किसी परेशानी के सबेरे चार बजे उठने लग गया। मन का प्रबन्धन और विकास करने के लिए हमेशा छोटे-छोटे कदम लेने चाहिए। ऐसे में तुम ज्यादा दूरी तय कर

पाओगे। लम्बी छलाँग लगाने की कोशिश मत करो, नहीं तो कहीं-न-कहीं जरूर गिरोगे।

सजगता विकसित करने के लिए भी यही पाँच मिनट का सिद्धांत लागू करो। क्या तुम पाँच मिनट के लिए अपनी सभी गतिविधियों की सजगता बनाये रख सकते हो? नहीं। तुम्हारा मन एक चीज से दूसरी चीज पर भागता है। एक सप्ताह के लिए दिन में कभी पाँच मिनट तक पूरी तरह सजग रहने का प्रयास करो। उस अवधि में अपनी प्रतिक्रियाओं और अभिव्यक्तियों पर पूर्ण नियंत्रण रखो। अगले सप्ताह दस मिनट प्रयास करो। तीसरे सप्ताह पन्द्रह मिनट। धीरे-धीरे तुम स्वतः दिन के चौबीसों घण्टे अपनी सजगता बनाये रख सकोगे।

मेरे अन्दर सजगता की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। सत्संग देते हुए भी मैं सजग रहता हूँ। मुझे मालूम रहता है कि मैंने कितनी बार अपना हाथ हिलाया है। यह एक अचेतन गतिविधि नहीं होती। मुझे मालूम है कि मैं क्या बोल रहा हूँ। कुछ भी बोलने से पहले मैं उसे दो बार सोच लेता हूँ। मैं आप सब से बातें कर रहा हूँ, लेकिन भीतर यह सब प्रक्रिया हो रही है। मुझे अपने शरीर की भंगिमा का पूरा ख्याल है। मैं आगे की ओर झुका हूँ या पीछे की ओर, इन सब चीजों के प्रति मैं सजग हूँ।

सजगता की इसी अवधि को बढ़ाते जाना है। ऐसा करने से अंत में तुम अपने जीवन के साक्षी बनोगे, द्रष्टा बनोगे। लोग सोचते हैं कि केवल ध्यान के समय द्रष्टा बना जाता है। यह सही नहीं है। अपनी आँखें खुली रखकर अपने आपके और अपने वातावरण के द्रष्टा बनो, यह तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। तुम पाओगे कि ऐसा करने से जीवन की अनेक नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ आसानी से संभाली जा सकती हैं। यही योग की सर्वोच्च साधना है। कोई भी दस मिनट के लिए आँखें बंद करके अपने विचारों का द्रष्टा बन सकता है। लेकिन केवल एक योगी क्षण-प्रतिक्षण द्रष्टा का भाव बनाए रख सकता है। यही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए। अपनी चिंताओं, कुण्ठाओं और समस्याओं का अवलोकन करो और उन्हें सुलझाने का प्रयास करो। योगनिद्रा की विधि का उपयोग करके अपने शारीरिक और मानसिक तनावों को दूर करो। आसन और प्राणायाम की विधियों का इस्तेमाल करके शारीरिक एवं प्राणिक असंतुलनों को व्यवस्थित करो। ध्यान की विधियों के माध्यम से अपने मन का कूड़ा-करकट साफ करो। ज्ञानयोग द्वारा अपने व्यक्तित्व

के सकारात्मक पक्षों को जानो तथा उन्हें उजागर करो। और यम-नियम के अभ्यास से अपने स्वभाव और चरित्र को निखारो।

अगर आप एक-एक करके इन बिन्दुओं को अपने जीवन में अपना सकें तो हमारे मनीषियों का वह स्वप्न साकार हो जाएगा, जिसमें उन्होंने कहा था, '*आत्मदीपो भव:।*' हर व्यक्ति के जीवन में प्रकाश की एक ज्योति जल उठेगी और वही हम लोगों के जीवन की पूर्णता होगी। इसलिए योगी बनने का प्रयास करो – *तस्मात् योगी भव*।

*हरि: ॐ तत्सत्*






SATYANAND YOGA
BIHAR YOGA
बिहार योग






BIHAR YOGA || ॐ || सत्यानंद योग ||| SATYANAND YOGA || ॐ || बिहार योग


BIHAR YOGA || ॐ || सत्यानंद योग || || SATYANAND YOGA || ॐ || बिहार योग




BIHAR YOGA



**स्वामी निरंजनानन्द** का जन्म छत्तीसगढ़ के राजनाँदगाँव में सन् 1960 में हुआ। जन्म से ही उनकी जीवन-दिशा उनके गुरु, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा निर्देशित रही। चार वर्ष की अवस्था में वे गुरु-सान्निध्य में रहने बिहार योग विद्यालय आये, जहाँ उनके गुरु ने योग निद्रा के माध्यम से उन्हें योग एवं अध्यात्म का गहन प्रशिक्षण प्रदान किया। सन् 1971 में वे दशनामी संन्यास परम्परा में दीक्षित हुए, तत्पश्चात् 12 वर्षों तक विभिन्न देशों की यात्राएँ कर विभिन्न संस्कृतियों की गहरी समझ प्राप्त की और सब जगह अपने गुरु के योग-प्रचार कार्य को आगे बढ़ाया।

सन् 1983 में गुरु-आज्ञानुसार भारत लौटकर वे बिहार योग विद्यालय, शिवानन्द मठ तथा योग शोध संस्थान की गतिविधियों के संचालन में संलग्न हो गए। सन् 1990 में वे परमहंस-परम्परा में दीक्षित हुए और 1995 में स्वामी सत्यानन्द के उत्तराधिकारी के रूप में उनका अभिषेक किया गया। सन् 1994 में उन्होंने विश्व के प्रथम योग विश्वविद्यालय, बिहार योग भारती; सन् 2000 में योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा सन् 1995 में बच्चों के एक बृहत् योग आन्दोलन, बाल योग मित्र मण्डल का शुभारम्भ किया। मुंगेर में विभिन्न गतिविधियों का संचालन करने के साथ उन्होंने दुनियाभर के साधकों का मार्गदर्शन करने हेतु व्यापक रूप से यात्राएँ कीं। सन् 2009 में उन्हें अपने गुरु से संन्यास जीवन का एक नया अध्याय शुरू करने का आदेश प्राप्त हुआ।

सन् 2010 में उन्होंने साधकों को भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के मौलिक स्वरूप का अनुभव कराने के प्रयोजन से संन्यास पीठ की स्थापना की। इसी वर्ष से उनके जीवन में उच्च साधनाओं एवं तीर्थयात्राओं का दौर शुरू हुआ।

सन् 2013 में उन्होंने मुंगेर में बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में विश्व योग सम्मेलन आयोजित किया और यौगिक पुनर्जागरण का शंखनाद किया। इसी वर्ष से उन्होंने दु:साध्य पंचाग्नि तपस्या प्रारम्भ की। सन् 2014 में उन्होंने देशभर में योग का प्रसाद वितरित करने हेतु योगयात्राओं का सिलसिला प्रारम्भ किया। तब से वे यौगिक शिक्षण के उस नए अध्याय को विकसित करने में संलग्न हैं, जिसके माध्यम से लोग अपने यौगिक अनुभव को गहन कर सकेंगे। साथ ही वे भारत की अनेक प्राचीन विद्याओं एवं परम्पराओं की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु प्रयासरत हैं।

स्वामी निरंजनानन्द योग दर्शन, अभ्यास एवं जीवनशैली की गहन जानकारी और समझ रखते हैं तथा योग, तंत्र एवं उपनिषदों पर अनेक प्रमाणिक पुस्तकों के प्रणेता भी हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन परम्पराओं का सुन्दर सम्मिश्रण करते हुए वे इस समय मुंगेर में अपने गुरु के मिशन को आगे बढ़ाने के कार्य में संलग्न हैं।




*'हम योग को मात्र एक अभ्यास नहीं मानते, बल्कि 'निरंजनानंद योग संहिता' में योग को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है– अभ्यास, साधना, जीवनशैली और संस्कृति। हम योग को इन्हीं चार रूपों में देखते हैं, और यही योग के विकास का स्वाभाविक क्रम भी है।'*

सन् 2009 से स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ है और मुंगेर में योगदृष्टि सत्संग शृंखला के अन्तर्गत योग के विभिन्न पक्षों पर दिये गये प्रबोधक व्याख्यान स्वामीजी की इसी नयी जीवनशैली के अंग हैं।

अगस्त 2011 में गंगा दर्शन विश्व योगपीठ में स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संगों का विषय दैनिक जीवन में योग का समावेश था। स्वामीजी ने मनुष्य जीवन में योग की भूमिका और प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए समझाया कि शरीर, मन और आत्मा के समन्वित विकास के लिए विभिन्न योग प्रणालियों को किस प्रकार संयोजित किया जा सकता है। साथ ही उन्होंने ऐसे सरल और प्रभावी यौगिक कैप्सूलों का विवरण भी प्रस्तुत किया है, जिन्हें हर व्यक्ति अपने दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बनाकर बहुआयामी लाभ प्राप्त कर सकता है। स्वामीजी की सुबोध शिक्षाएँ आधुनिक संदर्भ में पूर्णतया प्रासंगिक हैं और हर स्तर एवं वर्ग के योगाभ्यासी के लिए अनुकरणीय हैं।




ISBN :978-93-81620-69-4